स्मृतियो का मानव–जीवन से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध
जीवन के साथ स्मृतियॉ जुडी हैं और स्मृतियो से
ıन भरपूर है। स्मृतियॉ जीवन के अतीत की धरोहर
यथास्थान यथासमय और यथावसर इनकी आवृत्ति
ाे रहती हे। यो स्मृतियो की स्थिति मौन होती है
न्तु कभी–कभी व्यक्ति इनकी अभिव्यक्ति के लिए मुखर
उठता है। यह अभिव्यक्ति मौखिक और लिखित दोनो
रूपो मे सामने आती हे और सस्मरण का रूप लेती
मोखिक सस्मरण का क्षेत्र सीमित ओर क्षणिक होता है
ा लिखित का व्यापक और दीर्घकालिक। लिखित
मरण तब अधिक प्रभावशली ओर उत्प्रेरक बन जाते
जब किसी सक्षम लेखनी से निसृत हुए हो तथा
तेविशिष्ट व्यक्तियो के अन्तरग जीवन से जुडे हो। ऐसे
मरण साहित्य की अक्षय निधि बन जाते हैं।

अतीत से कृति मे सकलित सस्मरण इसी
टि के हैं। चर्चित एव सुधी लेखिका प्रो आभा अवस्थी
वेत इन सस्मरणो मे उनका अनुभव और हृदय बोलता
। प अमृतलाल नागर एम चलपति राव (एम सी)
सेवाराम शर्मा प्रो सुशील चन्द्रा प्रो एस सी
र्मा प्रो ए आर देसाई उस्ताद यूसुफ अली खॉ
ीयसी महादेवी वर्मा से सम्बन्धित सस्मरण एव
यानगरी मैक्सिको यात्रा–सस्मरण सभी मत्रमुग्ध करने
ली शैली मे लिखे गए हैं जिन्हे पढ कर पाठक भाव–
भोर हुए बिना नही रहेगे।

अतीत से

(संस्मरण)

आभा अवस्थी

सुलभ प्रकाशन

लखनऊ

प्रकाशक

सुलभ प्रकाशन
१७ अशोक मार्ग
लखनऊ २२६००१

ISBN 81 7323 135 9

सस्करण प्रथम

वष २००१ इ
मूल्य 100 रूपये

लजर टाइपसेटिंग श्याम कम्प्यूटर एकेडमी राजेन्द्र नगर लखनऊ

मुखावरण डॉ आभा अवस्थी

मुद्रक इलाइट प्रिंटर्स निशातगज लखनऊ

ATEET SE (Memoirs)

by *Abha Avasthi*

सादर सविनय समर्पित

पूज्या मॉ को

अनुभूति की गहनता जिनका वरदान है

पूज्य पिताजी को

अभिव्यक्ति की यत्किचित मेरी क्षमता जिनका पावन प्रसाद है ।

अतीत की प्रतीति

प्रसन्नता या न गताभिषेकस्तथा न मम्ले वनवासदुखत ।
मुखाम्बश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमगलप्रदा।।

रघुनन्दन अर्थात श्री रामचन्द्र जी के मुखारविन्द की जो शोभा राज्याभिषेक की बात सुनकर न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के दु ख से मलिन ही हुई वह मुख कमल छवि मेरे लिए सदा सुन्दर मगलों को देने वाली हो।

मेरे माता पिता की श्रीराम मे अगाध आस्था और रामचरित मानस मे प्रचुर प्रतीति है। दोनो ही गुरुजनो ने मुझे बचपन से ही उपरोक्त श्लोक इतनी बार सुनाया कि वह मुझे कठस्थ हो गया फिर इसका अर्थ-सार भी समझाया जीवन मे अमल करने के आशय से आदेश उपदेश भी दिया किन्तु रहा सभी निष्फल। मैं कभी भी इसे व्यवहारगत न कर सकी भावनात्मकता मेरे ऊपर एक प्रकार से हावी ही रही। सुख दु ख प्रिय अप्रिय ममता विषमता सभी को मैंने भरपूर भोगा है। सवेदनाओ ने मेरे मन से खूब खेला। उद्वेलित तरगों मे झूलना और भाव सिन्धु मे गोते लगाना मेरी नियति रही है जिससे चाहते हुए भी उबर न पाना अक्सर मेरी सामर्थ्य की विवशता सिद्ध हुई है। वैसे एक तथ्य यह भी है कि हमार पूज्य पिताजी भी तमाम कठिनाइयो से विचलित तो कभी नही हुए पर हर्ष विषाद से नितान्त निस्पृह वीतराग रह पाना उनके लिए भी सभव न हुआ। दूसरो के सुख दु ख के भी दे[illegible] भरपूर [illegible] रहे हैं। हाँ! माँ को अपनी भावनाओ पर सयम रखने की अदभुत क्षमता परमात्मा ने प्रदान की है। अपने नितान्त अवसाद के क्षणो मे भी घर के किसी भी सदस्य विशेषकर पूज्य पिताजी की नाम्मात्र की पीडा या उलझन या कठिनाई का आभास होते ही फौरन तटस्थ और सयमित हो जाना और अपना समस्त कष्ट भूलकर उसी से आत्मसात होकर सबल प्रदान करना माँ के विलक्षण व्यक्तित्व का लक्षण है। परिवार का काई भी सदस्य उनके अपने लिए क्या कर सका इसका किंचित लेखा जोखा उन्होने कभी नही रखा और न ही उसके लिए किसी से कोई गिला शिकवा ही माना। जिसने जो स्वेच्छा से कर दिया उसे ही उन्होने अपना अभीष्ट समझा। माँ के मन को चाहे कोई भी न समझ सका हो पर माँ का मन हर किसी के मन मे उतरा है अपनी बद आँखो से भी उन्होने सबके हृदय के अन्तरतम मे झाँका है इसके अनगिनत साक्ष्य हैं।

अतीत की प्रतीति

प्रसन्नता या न गताभिषेकस्तथा न मम्ले वनवासदुखत ।
मुखाम्बश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमगलप्रदा।।

रघुनन्दन अर्थात श्री रामचन्द्र जी के मुखारविन्द की जो शोभा राज्याभिषेक की बात सुनकर न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न वनवास के दु ख से मलिन ही हुई वह मुख कमल छवि मेरे लिए सदा सुन्दर मगलों को देने वाली हो।

मेरे माता पिता की श्रीराम मे अगाध आस्था और रामचरित मानस मे प्रचुर प्रतीति है। दोनो ही गुरुजनो ने मुझे बचपन से ही उपरोक्त श्लोक इतनी बार सुनाया कि वह मुझे कठस्थ हो गया फिर इसका अर्थ-सार भी समझाया जीवन मे अमल करने के आशय से आदेश उपदेश भी दिया किन्तु रहा सभी निष्फल। मैं कभी भी इसे व्यवहारगत न कर सकी भावनात्मकता मेरे ऊपर एक प्रकार से हावी ही रही। सुख दु ख प्रिय अप्रिय ममता विषमता सभी को मैंने भरपूर भोगा है। सवेदनाओ ने मेरे मन से खूब खेला। उद्वेलित तरगों मे झूलना और भाव सिन्धु मे गोते लगाना मेरी नियति रही है जिससे चाहते हुए भी उबर न पाना अक्सर मेरी सामर्थ्य की विवशता सिद्ध हुई है। वैसे एक तथ्य यह भी है कि हमारे पूज्य पिताजी भी तमाम कठिनाइयो से विचलित तो कभी नही हुए पर हर्ष विषाद से नितान्त निस्पृह वीतराग रह पाना उनके लिए भी सभव न हुआ। दूसरो के सुख दु ख के भी वे सदा भरपूर साझेदार रहे हैं। हाँ! माँ को अपनी भावनाओ पर सयम रखने की अदभुत क्षमता परमात्मा ने प्रदान की है। अपने नितान्त अवसाद के क्षणो मे भी घर के किसी भी सदस्य विशेषकर पूज्य पिताजी की नाममात्र की पीडा या उलझन या कठिनाई का आभास होते ही फौरन तटस्थ और सयमित हो जाना और अपना समस्त कष्ट भूलकर उसी से आत्मसात होकर सबल प्रदान करना माँ के विलक्षण व्यक्तित्व का लक्षण है। परिवार का कोई भी सदस्य उनके अपने लिए क्या कर सका इसका किंचित लेखा जोखा उन्होने कभी नही रखा और न ही उसके लिए किसी से कोई गिला शिकवा ही माना। जिसने जो स्वेच्छा से कर दिया उसे ही उन्होने अपना अभीष्ट समझा। माँ के मन को चाहे कोई भी न समझ सका हो पर माँ का मन हर किसी के मन मे उतरा है अपनी बद आँखो से भी उन्होने सबके हृदय के अन्तरतम मे झाँका है इसके अनगिनत साक्ष्य हैं।

पिताजी और मॉ का कृतित्व व्यक्तित्व विपर्यय भी बडा विचित्र है। प्रत्यक्षत कुछ कुछ छत्तीस के आँकडो सा जैसे माँ द्वारा किसी भी वस्तु को बहुत सम्हाल कर रख कर भूल जाना बिल्कुल सामान्य बात है जबकि पिताजी की विशेषता रही है कि कुछ भी फेक कर उसे खूब याद रखते हैं। अमुक वस्तु मै यही डाल गया था कहॉ गई ? उनकी आम खिजलाहट का एक रूप है। किसी बच्चे के चोट चपेट लगने पर चाहे बाद मे हड्डी ही टूटी निकले मॉ द्वारा उपचार नमक डालकर गर्म पानी की सेक से शुरू किया जाता है। दूसरी तरफ यदि किसी को मामूली मोच भी हो और कही भूले भटके पिताजी के सज्ञान मे आ जाये तो एक्सरे से कम का निदान उनकी समझ मे नही आता पिताजी को कुछ भी बता कर उसे सार्वजनिक बनने से बचाना किसी जोखिम लेने से कम नही होता है क्योंकि मन मे कुछ रखना उन्हे कभी नही सुहाता। माँ को सभी लोग डेड लेटर आफिस मानते है। घर का बाहर का मित्र या सबधी कोई भी नि सकोच पूर्ण विश्वास के साथ अपनी व्यथा कथा इस डेड लेटर आफिस मे निर्भय होकर समाधिस्थ कर सकता है। इसी न्याय से जाने कितनो के दु खो की वे साझीदार रही होगी वह भी हर एक के साथ पूर्ण लिप्त भाव से। इन गोपनीय कथाओ के विषय भी पात्रो के अनुसार ही होते हैं कभी वृहत परिवार की कोई वधू बहुरगी लम्बा ऑचल खीच कर उनका कान अपने घूँघट मे समेट लती है तो कभी कोई अनुचर अनुचरी उनके पाँव पडकर ऐ माता जी के श्रवणीय उच्चारण के साथ कुछ कुछ बुदबुदाते दिखते हैं तो कभी किसी को उनके उस अकेले क्षण की जानकारी की जिज्ञासा रहती है जब उसके द्वारा किये गये टेलीफोन पर वे अखण्ड वृत्तान्त एकनिष्ठ रूप से सुनने की स्थिति मे हो अथवा अपने परिवार से सतप्त उनसे सलाह सान्त्वना का मुखापेक्षी होकर वह धमकना चाहता है। इन सभी प्रसगो मे अगले की वाणी मे परछिद्रान्वेषण का पुट और प्रतिपक्षी को अपराधी या आततायी सिद्ध करने का नैसर्गिक भाव प्रमुख होता है। ऐसे प्रकरणो का सबसे रोचक पक्ष यह होता है कि प्रतिपक्षी भी उतनी ही आस्था आत्मीयता और विश्वास के साथ माँ को अपने कष्ट का साझीदार और अपना वकील मानने मे लेशमात्र सकोच नही करता। इसका मूल कारण मॉ द्वारा उसके रहस्योदघाटन की सभावना का क्षीणातिक्षीण होना ही होता है। क्या मजाल कि इन रहस्यो का एक अश भी मॉ से जानने मे कोई सफल हो जाये या किसी को इसकी भनक लग जाये पिताजी को नो कतई नही।

सहनशक्ति भी मॉ की अदभुत है। कठिन से कठिन पीडा मे भी उफ न करना मॉ से सीखा जा सकता था जबकि घर के अन्दर कोई शारीरिक कष्ट होने पर सारे घर को अपने प्रति आकर्षित कर सकने मे सक्षम पिताजी को केवल धैर्य मूर्तमान मॉ ही सम्हाल सकती हैं। इस सबके बावजूद भी माँ और पिताजी का जीवन ज्योतिष के पूर्ण छत्तीस गुणो वाला सयोग ही बना रहा शायद परस्पर पूरक होकर। वस्तुत दोनो के मौलिक जीवन मूल्य समरस तत्वो की निर्मिति है। हमने कभी भी उन्हे सहज मानवता के धरातल से डिगते नही

देखा। जिन्दगी के उत्कृष्टतम मूल्यो के प्रति किसकी प्रीति प्रतीति अधिक है इसका निर्णय हम सबकी सामर्थ्य से परे रहा है। विधाता ने मॉ और पिताजी को अतिशय उदारता नितान्त निर्लोभ सार्वजनिक सदाशयता लोक मर्यादा निर्वाह क्षमता और शील सरक्षण आदि प्रदान करने मे किंचित कृपणता नही की। सहिष्णुता यदि मॉ के प्रत्येक स्पन्दन की चेष्टा है तो किसी के प्रति कहे किये को दुबारा मन मे भी न लाना पिताजी की विरल विशेषता है। दोनो के हृदय स्नेह के अगाध सागर कभी न चुकने वाले । दोनो ही धर्मभीरु और कर्त्तव्यपरायण शब्दो से अधिक कर्म मे विश्वास रखने के पक्षपाती। नारी मुक्ति अथवा पुत्र पुत्री समानता की गुहार दोनो मे से किसी ने कभी नही लगाई किन्तु पुत्र पुत्री के पालन पोषण शिक्षा दीक्षा मे कभी कोई अन्तर नही किया– बहू बेटी मे भी नही। पुत्रियॉ बडी थी– जबकि यदि सामाजिक कर्मकाण्डीय परम्परा मे पुत्रियो के कल्याण के लिए किसी व्रत उपवास का विधान नही था तो मॉ ने पुत्र जन्म के बाद भी ऐसे किन्ही व्रत उपवासों को नही साधा जो केवल पुत्र कल्याण से जुडे होते हैं। माँ पिताजी ने अपने पुत्रो को जीवन मे जितने अवसर या स्वतत्रता दी उसके लेशमात्र कम की अधिकारी उनकी पुत्रियाँ कभी नही रही लेकिन फिर भी नैसर्गिक स्पृहणीयता सुकुमारिता की रक्षा और देखरेख के भार से उन्होने अपने को कभी विरत नही किया। अन्ध विश्वासो और लकीर पीटने के प्रति दोनो सदैव समान रूप से उदासीन रहे जबकि या जग मे फिर जीबो कहाँ जब आँगुरी लोग उठावन लागे मे मॉ और पिताजी की सघन आस्था सदैव बनी रही जिसका उन्होने तो निर्वाह किया ही है सभी बच्चो से भी उनकी यही अपेक्षा रही।

पिताजी की निजी जीवन शैली मे उनकी भावगत स्वभावगत एव व्यावहारिक विशिष्टताओ ने पारिवारिक जीवन को कभी समतल समरस नही बनने दिया। इसमे यदा कदा गभीर ज्वार भाटे भी आये लेकिन वे सभी माँ के वारिधि मन मे ही समा कर शान्त हो सके। कितने ही आन्दोलनो उद्वेलनो को झेलते सहेजते हुए माँ ने परिवार को बाह्य झझावातो से मुक्त रखने की सतत चेष्टा की है।

अपने सामाजिक शैक्षिक जीवन मे अति व्यस्त पिताजी घर मे काफी अस्त व्यस्त रहते थे। घर आते ही थे पूरी तरह पस्त होकर। हमारे बचपन मे उनके हम लोगो के साथ समय बिताने के क्षण प्राय नगण्य होते। उनसे किसी प्रकार की छूट लेने की बात सोचना भयकर दुस्साहस था। सारी बातचीत काम से सबधित होती थी। पिताजी अत्यन्त वाकपटु विलक्षण स्मृति और प्रत्युत्पन्नमतित्व के धनी रहे हैं बातचीत मे भी। किसी की भी मीठी तीखी बात का उसी शैली और भाव मे उससे कही तीव्रतर अभिव्यजना सहित उत्तर देने मे वे चूके नही होगे और इसमे व्यक्तिपरक कोई भेदभाव भी उन्होने अपवाद रूप मे ही किया होगा। नहले पर दहला देने मे वे दक्ष हैं। स्नेह शिष्टता रोष व्यग्य कटाक्ष सभी की तीखी त्वरित प्रतिक्रिया पिताश्री के व्यवहार का अग हैं। किसी की बात सुनकर हतप्रभ होते

( )

हमने उन्हे कभी नही देखा। उनके दैनदिन वार्तालाप मे भी भाषागत चमत्कार एव सामान्य वाद विवाद मे साहित्यिक पुट रहता है। सम्पन्न शब्द साम्राज्य (हिन्दी अग्रेजी और उर्दू) के वे स्वामी है। इसीलिए यदि गुस्से मे किसी को डॉटना भी हो तो किसी गल्ती के लिए प्रयुक्त एक विशेषण का इकलौता प्रयोग उनके लिए काफी नही होता उन्हे सतोष तभी होता है जब वे उस विशेषता के पॉच छ पर्यायवाचियो से दोषी को एक सॉस मे अलकृत कर ले। तीखी बात उन्होने कभी किसी की सहन नही की- न अफसर की न मातहत की बराबर वाले की भी नही। किसी के भी कटाक्ष का उसके प्रत्युत्तर मे तिलमिला देने वाला वाक्वाण चलाने मे उन्होने कभी दूसरा क्षण नही लगाया। इतनी ही तीव्रता से उन्होने विनम्रता शिष्टाचार स्नेह आत्मीयता आदि भावो का भी निर्वाह किया है– हर प्रकार की प्रतिक्रिया मे कई अश ऊपर। कृतज्ञता वे भगवान का गुण मानते हैं जो उनके रोम रोम मे व्याप्त है। मान मर्यादा निर्वाह मे वे चूके नही मर्यादा उल्लघन उनके कोप से बचा नही। उनके भाषागत मौखिक प्रयोगो से ही हम सभी को भाषाभिव्यक्ति का कुछ कुछ प्रसाद मिल गया है।

मैं सबसे बडी सतान होने के कारण पिताजी और माँ के भी सामीप्य सान्निध्य मे अधिक रही तभी मैने माँ की गभीर मौन पीडा भी अनुभव की यद्यपि उसे बॅटा कभी नही सकी। जीवन के उतार चढ़ाव मन के ऊहापोह और भावनाओ की उधेडबुन मे जिन सवेगो से मेरा साक्षात हुआ उनकी पुनर्पुनरावृत्ति ने भी मेरी सवेदनशीलता का शोषण ही किया। मनोभावो के स्पन्दन ने अभिव्यक्ति के रास्ते ढूँढ़ने शुरू कर दिये।

ललित कलाओ मे अपनी गति होने का दावा मेरा कभी नही रहा है किन्तु मेरी न्यूनाधिक रति इनके प्रति अवश्य रही हैं। जीवन के तीसरे दशक मे जब गुडिया सृजन शुरू किया तो मूर्तिकला मे रियाज भी अनिवार्य जान पड़ने लगा। उसके बाद जब नन्ही कृतियॉ निर्मित हुई तो लगा अपनी ही भावनाएँ मूर्त हो गई। गुडियो के माध्यम से विविध रसो के चरित्रो की सृष्टि काव्य निरूपण और भावना प्रधान कृतियाँ जैसे मेरे मन के तमाम उदगारो को प्रतिबिम्बित करने लगी। गुडिया मेरे लिए मात्र गुडिया न होकर जैसा कही एक बार छपा था गुडिया मेरी कला की बिटिया' की तरह उभरने लगी। मेरी इस छोटी सी सृष्टि की शसा प्रशसा ने मुझे मेरे मन को क्या दिया मैंने क्या पाया मेरी वह उपलब्धि मेरे जीवन की अनमोल निधि है। अपने व्यक्तित्व के प्रकटन और अपनी सामाजिक मान्यता हेतु मैं अपनी इन कृतियो का निश्चय ही आभार मानती हूँ। इनके साथ मेरी भावनाएॅ जैसे घुल मिल गई थी। सयोग वियोग खिन्नता प्रसन्नता रोष तोष व्यक्त करने वाली कृतियो की निर्मिति मे मेरा अपना मन उसी भाव के साथ एकाकार हो जाता था। पता नही मै गुडियो से खेल रही थी या गुडिया मुझसे लेकिन यह खेल जीवन की मुख्यधारा का अग नही बना बन सकता भी नही था।

विश्वविद्यालय मे प्रवक्ता पद पर मेरी नियुक्ति न कतिपय नई भ[illegible]िकाओ क द्वार

खोल दिये कुछ सहज और कुछ चुनौतीपूर्ण भी पर सभी समय साध्य। गुडियो के लिए वक्त निकालना कठिन जान पडने लगा उधर उनका रखरखाव भी भारी पड रहा था। किन्तु गुडियाँ मेरी भावनात्मकता को पूरी तरह उकेर चुकी थी और उनसे विरत होने पर कुछ खोये खोयपन की अनुभूति होने लगी थी सब कुछ अनमना सा।

अभी तक मुझे ऐसा नही लगा था कि मैं शब्दो द्वारा भी अपनी मनोभावाभिव्यक्ति करने मे सक्षम हो सकती हूँ। बचपन मे तो पत्र लिखना भी रास नही आता था अब तो खैर एस०टी०डी० सेवाओ ने पत्र लेखन सस्कृति को ही निगल लिया है। तब मेरे लिए पत्र लिखने के बहुत अवसर भी नही थे। सभी परिवार जन का साथ साथ रहना लखनऊ एकदम स्थायी निवास मित्र सम्बन्धी सब यही। चिट्ठी लिखे भी तो किसे ? किन्ही विशेष परिस्थितियो मे यदि मॉ के आदेश पर किसी को पत्र लिखा भी तो अत्र कुशल तत्रास्तु जैसा ही कुछ लिखकर सरकारी ढग से सूचना या पृच्छा का उत्तर प्रदान करना मात्र ध्येय होता था उन पत्रो का।

पहली बार जब विदेश जाने का मौका मिला और परिवार से अलग हुई तो हवाई जहाज के उडते ही घर की याद सताने लगी। दुबई हवाई अड्डे पर तकनीकी खराबी आने से विमान कुछ ज्यादा देर रुक गया और वही से सविस्तार पत्र लिखना शुरू हो गया। लदन पहुॅचने तक यह पत्र पूर्ण हो पाया और वही पोस्ट कर दिया। इसके बाद चार पॉच देशो मे जाना था हर जगह यथावत पत्र लेखन चलता रहा। नय देश मे डाकखाना ढूॅटना एक समस्या होती थी। फिर भी किसी न किसी तरह डाक टिकट उपलब्ध करके पत्र प्रेषित हो ही जाता था। खत लिखने का जुनून वहॉ इस हद तक सवार हुआ कि अतत भारत वापस आन के तीन दिन पहले तक चिट्ठी पोस्ट करती रही क्योकि इससे पहले डाक टिकट नही मिल सके थे नतीजा यह हुआ कि एकाध पत्र हमारे घर पहुॅचने के बाद लखनऊ पहुॅच पाये। घर आकर इन पत्रो का पूरा पुलिन्दा फिर मेरे हाथ लग गया। यही मेरा प्रथम विवरणात्मक अनुभवात्मक लेखन था– इस पत्रावली के माध्यम से। बाद मे अपने ही लिखे पत्र पढ़े तो लगा एक आलेख जैसा बन सकता है। प्रथम विदेश यात्रा की गुदगुदी उसके बाद कभी भी वैसी न हुई। बस यही कारण है कि वह विवरण भी अतीत स लेकर अतीत म मे शामिल करने का लोभ सवरण न कर सकी यद्यपि माया नगरी मैक्सिको शेष प्रस्तुतियो की धारा से बिल्कुल बाहर है। इस यात्रा वृत्तान्त के बाद से कुछ कुछ लिखने का मन होने लगा। इसके बाद मे जो अनुभव लिपिबद्ध हुए उन्हे अपने ही दूसरे मनोभावो मे पढने पर कुछ अच्छा भी लगन लगा।

मेरे जीवन मे बहुत से ऐसे क्षण आये हैं जब मुझे अपना अतीत अपन से आगे आगे चलता सा लगा है कभी वर्तमान का सरक्षक होकर तो कभी भविष्य का दिग्दर्शक बनकर। विगत मे जिन व्यक्तियो स मैं प्रभावित हुई या जिन्होने मेरे मन पर एक छाप छोडी वे

अनेकानेक अवसरो पर सकारण अकारण याद आ जाते हैं विशेषकर स्मृति शेष हो जाने पर भी उनकी स्मृतियाँ साकार हो उठती हैं। इन सभी अलौकिक हुए व्यक्तियो की यादे भी अतीत से वर्तमान की यात्रा मे अब अलौकिक ही लगती हैं। मानस-पटल के ये चित्र कभी एक अनिर्वचनीय तोष का सृजन करते हैं तो कभी मन मे किसी अदभुत प्रेरणा का सचार कर जाते हैं। इस आत्मानुभूति की तीव्रता सघनता को यदि मेरी लेखनी की गतिशीलता पूर्ण सुस्थिर नही कर सकी तो वह मेरी अपनी अक्षमता है।

मौखिक रैखिक भाषाभिव्यक्ति का सम्बल पाने के बाद जब कुछ छपने पढ़ने मे भी आ गया तो कई बार लोगो की उत्कठा जागी कि क्या हिन्दी ही मेरा प्रमुख औपचारिक विषय है अथवा मैंने हिन्दी मे एम०ए० क्यो नही किया ? उनके प्रति उपहास मे मेरी प्रतिक्रिया होती अच्छा हुआ मैंने हिन्दी मे एम०ए० नही किया वरना यह सब पिताजी की हो जाती यो यह हिन्दी मेरी है' (पिताजी हिन्दी के आचार्य हैं)। तथापि यथार्थ यही है कि भाषा ज्ञान शब्द प्रयोगक्षमता और यत्किचत साहित्यिक अभिरुचि माता पिता का ही प्रसाद है उन्ही की विरासत है जिसे मैंने कुछ रक्त की तरलता मे और शेष सस्कारो की सरसता से प्राप्त किया है मेरा अपना कुछ भी नही।

अपने अतीत को सार्वजनिक बनाने का निमित्त आत्मतोष है जिसका साझीदार पाठको को बना रही हूँ। उपकार है मुझ पर उन महान विभूतियो का जिन्होने मेरी लेखनी को पक्तिबद्धता के प्रति प्रेरित किया उत्साहित किया साहस प्रदान किया। सभी को मेरा सविनय नमन।

लखनऊ
इक्कीसवी सदी का प्रथम दिवस

आभा अवस्थी

अनुक्रमणिका

बछिया के ताऊ

पूज्य ताऊ जी यानी श्री अमृतलाल नागर जी को मैंने पहल पहल कब देखा था याद नही पर मुझे स्पष्ट रूप से बताया गया था कि वे मेरे ताऊ हैं क्योकि पिताजी से वे एक वर्ष बडे हैं। उन्होने मेरे चाचा सम्बोधन को झिडक कर अस्वीकार कर दिया था। फिर जब भी पूज्य पिताजी के साथ मै उनसे मिलती तो पिताजी हमेशा मुझे उनकी बछिया कहकर ही सम्बोधित करते कराते। एक बार किसी ने इस सम्बोधन की सार्थकता पर जिज्ञासा व्यक्त कर दी तो समाधान स्पष्ट था- बछिया और बछिया के ताऊ ! ताऊजी भी इसे इतनी ही विनोद प्रियता से लेते थे पिताजी से कहते तुमने मुझे बछिया के ताऊ कहा मै इसका बदला तुमसे जरूर लूँगा।

ताऊजी से मेरा सघन सम्पर्क मेरी गुडियो की प्रदर्शनी के दौरान हुआ। १९६९ मे मेरी यह प्रदर्शनी लखनऊ के हजरतगज स्थित सूचना केन्द्र मे लगी थी। तत्कालीन राज्यपाल श्री गोपाल रेड्डी ने इसका उदघाटन किया- और सयोग से प्रेस और पब्लिक दोनो ने ही इसे बहुत सराहा था। परिणामत इसके माध्यम से मुझे लखनऊ की तमाम लब्धप्रतिष्ठ हस्तियो से मिलने और उनके आशीर्वाद पाने का अवसर मिला था। हजरतगज एक मुख्य बाजार तो है ही- सूचना केन्द्र एक सम्मानित स्थान भी माना जाता है। इसलिए अधिकाश लोग अखबार पढ़कर ही गुडिया देखने आए थे। दूसरे दिन अन्य महानुभावो मे कविवर श्री भगवतीचरण वर्मा जी भी पधारे थे और मेरी गुडियो को कला के अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लिखित रूप से स्थापित कर गये थे। उन्होने अपना सुलेख इन शब्दो मे बॉधा था-

कला की उत्कृष्ट कृतियाँ इन गुडियो के सम्बन्ध मे मुझे इतना ही कहना है। भावना साथ मे शिल्प इनका सुन्दर समन्वय मुझे देखने को मिला। भारतीय कला का यह निरूपण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का कहा जा सकता है।

तभी मुझे ताऊजी की बडी याद आई। मैंने उन्हे फोन पर अपनी गुडियॉ देखने के लिए आमत्रित किया तो उन्होने आश्चर्य व्यक्त करते हुए बताया कि अखबार मे उन्होने भी खबर देखी थी पर मै तो समाजशास्त्र की डाक्टर हूँ वही पढाती हूँ- मेरा गुडियो से क्या सबध ? मैंने कहा आप आकर देखे और आशीर्वाद दे। अगले दिन ताऊजी पधारे। एक एक गुडिया को उन्होने पूरे मनोयोग से देखा देखते रहे। मेरी कई गुडियॉ भाव प्रधान थी कुछ मे कवियो की पक्तियो को साकार करने का प्रयास था और कुछ नृत्यकला के विकास क्रम को दर्शाती थी अर्थात मदिरा से होटलो तक नृत्यकला की यात्रा की बिविध स्थितियो

की द्योतक। ताऊजी जैसा उनका स्वभाव था मुग्ध भाव से उन्हे निहारते रहे। बीच बीच मे सराहते रह और मुझे बराबर असीसते रहे। जब पूरे हाल की दो परिक्रमाएँ करके वे बाहर निकल रहे थे तो उनकी सम्मति लेने के लिए नोटबुक उनके सामने रख दी मई

चीथडो को काव्य रूप देने वाली शिल्प निपुण उँगलियो को कभी बदनजर न लगे। इस प्रदर्शनी को देखकर बहुत सुखी हुआ भाव भगिमाएँ सजावट सभी मे जीवन का स्पर्श है। हार्दिक बधाई और शुभाशीष। ताऊजी ने उस पर लिखा था।

मेरी प्रदर्शनी मे चार गुडियो का एक सेट भी था जो कि कवि पद्माकर की होली खेल कर आइ नायिका की चार स्थितियो का मूतीकरण था।

पद इस प्रकार था

आई खेलि होरी गोरी नवल किसोरी भोरी
बोरी गई रगनि सुगधनि झकोरै है।
कहै पद्माकर इकत चलि चौकी चढि
बारन ते हारन के फद बिंद छोरै है।
घॉघरे की घूमरि सो उरुनि दुबीचे दाबि
आँगिहू उतारि सुकुमारि मुख मोरै है।
दतनि अधर दाबि दूनरि भई सी चाप
चौअरि पचौअरि करि चूनरि निचोरै है।

यह टैब्लो ताऊजी को सबसे अधिक भाया। मुझसे कहा कि ये पक्तियाँ लिखकर मैं उन्हे दे दूँ। इतने मे पिताजी भी वहॉ आ गये थे। दोनो लोग वही काफी देर तक बैठे बात करते रहे। मैं अपने आगन्तुको मे व्यस्त हो गई। जब चलने लगे तो उन्होने मुझे बताया कि चौक स्थित मेरे कालेज के पीछे लाजपतनगर मे एक छोटा सा कमरा उन्होने ले रखा है– मैं वही उन्हे पद लिखकर दे दूँ। उन दिनो वे मानस का हस लिख रहे थे– जो प्राय समापन पर था।

अगले दिन कालेज समाप्त करके मैं वहॉ गई तो देखा कि लोहे के फाटक मे बँधी हुई जजीर मे ताला झूल रहा है। दिन समय सब तय करके गयी थी फिर भी ताला लगा देखा तो यही समझा कि कोई आवश्यक काम लग गया होगा। घर आकर शाम को फोन किया मेरी बात आधी सुनते ही ताऊ जी बोल पडे अरे राम राम ! वह ताला तो झूठा है। मैं बताना ही भूल गया जब जजीर से ताला लगा हो तो खटखटा देना राम राम क्या बताएँ । खैर।

दूसरे दिन नियत समय पर मै फिर वहाँ पहुँची। झूठे ताले को देख कर फाटक

आओ आओ गुडिया डाक्टर। उन्होने मेरा नया नामकरण कर दिया था।

छोटा सा ऑगननुमा कच्चा पक्का खुला स्थान और निहायत साधारण बना हुआ छोटा सा कमरा। कमरे के अदर एक तख्त एक चौकी एक दो छोटी कुर्सियाँ दीवार मे बनी खुली अल्मारी मे कुछ पुस्तके और कुछ नन्हे उपकरण डब्बे मूर्ति आदि। तखत पर ताऊ जी बैठ गये। उसी तखत पर रखी लिखने पढ़ने की चौकी पर किसी पुरातन पाषाण मूर्ति के खडित पाँव का अलकृत पजा जिसका पेपरवेट के रूप मे उपयोग किया गया था और ढेर सारे कागज कुछ फाइले आदि। बाहर एक सर्विस शौचालय एल की शक्ल मे घिरा शायद इतना ही दिखा था जिसे मैं बिना झिझक गर्दन घुमा घुमा कर देख रही थी।

'बेटी। बहुत दिन झूठ बोला घर वालो से बुलवाया। क्या करूँ लिखने के लिए बिना व्यवधान का एकान्त चाहिये। बस अब शरद ने यह जगह ढूँढ़ दी तो सुखी हो गया। अब यह मानस का हस पूरा हो जायेगा। प्रकाशक भी जल्दी मचा रहा है।

और यहॉ भी हम आपको तग करने आ गये मैंने कहा।

'तुम तो बेटी समय लेकर आई हो न। इसमे कोई परेशानी नही लेकिन जो अपनी मर्जी से कभी भी पधार जाते हैं उनसे बचने का यह तरीका है। फिर इधर उधर कुछ देखने लगे मैं तुम्हे क्या खिलाऊँ ? तुम पहली बार आई हो। मेरे पास कुछ मठरियाँ रखी हैं तुम्हारी चाची ने बना कर दी थी।

उन्होने एक कटोरदान जैसा डिब्बा खोला और कुछ मठरियाँ मेरे हाथ मे पकड़ा दी लो गुडिया डाक्टर।

फिर वे मेरी रुचि के स्तर पर कुछ कुछ बताते रहे। कमरे से बाहर एक क्यारी मे दो चार पौधे लाल गुलाब के लगे थे और सुर्ख रग के फूल झूम रहे थे। ताऊजी ने बताया कि उन्होने वहॉ आने पर वे पौधे लगाये थे जो अब फूलने भी लगे हैं। अब की जाडे मे वे कुछ मौसमी पौधे लगाना चाह रहे थे। मुझे बागवानी का थोडा शौक है यह उन्हे ज्ञात था बोले अब मैने सोचा है कि क्यारी मिट्टी ठीक कर ले। फिर पौधे लगाने होगे तो मैंने तय किया है कि मैं अपनी गुडिया डाक्टर से भीख माँगूँगा। देगी न मेरी गुड़िया डाक्टर।

विनम्रता और अधिकार जैसे उनके वात्सल्य के सन्मुख साकार हो गये थे। एक शब्द भी मेरे मुँह से न निकला। वहॉ पौधे लगाने मे मुझे भी कितना अच्छा लगेगा यह मैं उन्हे कुछ क्षण बाद ही व्यक्त कर पाई थी।

उस समय सितम्बर माह था। कोई दो सप्ताह बाद मै कई किस्मो के पौधे लेकर गई। ताऊजी प्रसन्न तो हुए ही पर उससे भी अधिक उन्होने प्रसन्नता व्यक्त की। आशीर्वाद की झडी सी लगा दी।

वे अदर से एक कलछुल ले आये। खुरपी वहाँ नही थी और उसी से खोद खोद कर हम पौधे रोप आये। पौधो को लगाने के बाद उन्हे बीच बीच मे देखने का प्रलोभन मुझे

यदा कदा ताऊजी के पास ले जाता था पर मैने कभी भी बिना समय लिए हुए वहाँ जाने को भूल नही की। २० २५ मिनट के लिए ताऊजी का यह सान्निध्य जीवन की अमूल्य क्षण निधि जैसा लगता था। कभी पौधो कभी पुष्प और कभी मेरी गुडियो के माध्यम स जो अनमोल शब्द मुक्ता वे बिखरा देते थे उसे समेट कर सॅवारना और फिर सॅजोकर उनके सार को समझना एक निराला अनुभव होता था। फिर जब तक ताऊजी उस कुटी मे रहे दोनो मौसमो मे पौधे पहॅुचाना मेरा सुखद नियम बन गया था। बाद मे नाच्यौ बहुत गोपाल और सभवत खजन नयन के कुछ अश वही लिखे गये।

नागर जी के यही के प्रवास के दिनो मे एक बार गोमती नदी मे बाढ आइ थी। तब वहॉ बॉध नही बना था नीबू पार्क के पास स्थित इस कुटी के अदर पानी आ गया था। ताऊजी को कमरा खाली करना पडा था।

बाद मे मैंने पूछा आप वहॉ से कब आये थे ?

उस दिन आह्लाद से उन्होने बताया अरे शाम से ही यह लोग मुझे निकालना चाह रहे थे लेकिन मैंने कहा पहले हम अपनी बूटी घोट कर पी लेगे तब यहॉ से जायेगे। तब तक पानी कमरे मे भी आ गया था बाहर तो काफी था। यह लोग तखत को तैराकर बाहर ले गये थे। उ की बाल सुलभ हॅसी सहित उनकी यह बात सुनकर बडा आनन्द आया।

हमारे पूज्य पिताजी को अक्सर नीद न आने की शिकायत रहती। इस व्यथा का जब भी वे ताऊजी से जिक्र करते तो वे विजया का उपाय बताते भइया कहो तो अनारदाने मे बनवा दूॅ या दूसरे चूरन मे। आराम से बस दो गोली ले लो और मौज की नीद सोओ। परन्तु पूज्य पिताजी की उनकी इस राय पर अमल करने पर कभी उनसे सहमति न हो पाई।

ताऊजी को एक बार गले मे कष्ट हो गया था। डाक्टरो को किसी असाध्य रोग की आशका थी। बोलने और घूॅटने मे कष्ट होता था। मैं देखने गई। वे वही कुटिया मे ही थे।

बोले बेटी अब दो दुर्गुण पाले हैं तो इन्हे आजीवन निभाऍगे। पाली हुई चीज को भला कोई छोडता है। जो होना है वह तो होगा ही। नियति को किसने देखा या रोका है।

उनका आशय भॉग और पान से था। ईश्वर की कृपा से वे इस रोग स मुक्त हो गये थे और वे अपने दोनो दुर्गुणो का निर्वाह करते रहे।

ताऊजी बम्बई जाने वाले थे। उन्होने मुझसे अपनी ओर से कहा कि वे मेरी गुडियो पर एक लेख धर्म युग मे लिखना चाहते है। यदि मै गुडियो के कुछ तिरगे चित्र उन्हे बम्बई भेज दूॅगी तो वे लेख लिखकर वही दे देगे। मेरे लिए इससे बडी सौगात और क्या हो सकती थी । ताऊजी मेरी गुडियो के ऊपर अपने नाम से लेख लिखेगे वह धर्म युग मे छपेगा चित्रो सहित। आसपास का वातावरण कुछ ज्यादा अच्छा लग रहा था। पैर भी जैसे कुछ उडने उडने को हो रहे थे और मन मनसूबो मे उलझ गया था। ताऊजी शायद बम्बई पहुॅचे भी न होगे मैं तस्वीर खिचवान की जुगाड मे जुट गई थी। उन्हे वहॉ कुछ महान

रुकना था। इस बीच मैने चित्र उन्हे भेज दिये। दस एक दिन बीते होगे कि ताऊजी के हाथ का लिखा एक पोस्टकार्ड डाक से आया

तुमने जो पद मुझे दिया था वह शायद लखनऊ मे ही रह गया, बेटी ! अब अपने ताऊ की भुलक्कडी आदत पर क्षुब्ध हुए बिना एक बार पद फिर से लिख कर भेज दो। पद और चित्र मिलते ही लेख धर्मयुग को दे दूँगा।

एक तुच्छ से कागज के न मिलने पर इतनी सहज मधुर स्वीकारोक्ति और उससे भी अधिक स्नेहसिक्त आग्रह– मानो उसे भेजकर मै उन्हे उपकृत करूँगी ! हृदय की यह विशालता उनके व्यक्तित्व की विराटता का सशक्त धरातल जाने कितने तथाकथित बडे व्यक्ति और उनका आत्म दर्प सचमुच कितने बौने है सब। मैं सोचती रही थी। पद मैंने लिख कर भेज दिया और चित्र भी। लेख धर्मयुग मे छप गया आभा की गुडिया। लेख का प्रथम वाक्य था– ताऊजी मेरी गुडिया प्रदर्शनी देखने आइयेगा । पुरानी सारी यादे नई हो गई।

ताऊजी के पास बिताये क्षणो मे उन्होने कितने ही मूल्यवान विचार रत्न मुझे दिये थे। एक बार कुछ विदेशी फूलो के पौधे लगाते लगाते मेरे मुँह से निकला था–

इनमे सुगध तो है नही। हमारे यहॉ तो निर्गन्धा इव किंशुका" कहा गया है। सुगधहीन पुष्प का कोई महत्त्व नही है।

ताऊजी ने समझाया था इनके रग देखो। इन रगो की विविधताओ मे कितना सुख है।

उनका आशय एक इन्द्रिय सुख तक सीमित न रहने का था। अक्सर वे मुझसे पूछते कि मै इन गुडियो को कहाँ तक सॅजोए रखूँगी। मुझे इन्हे कद्रदानो को बेच देना चाहिये। यदि मै ऐसा नही करूँगी तो अन्तत मेरा सृजन बाधित हो जायेगा। बात सही थी बेचने का मन मै कभी बना नही पाई और स्थान के अभाव एव रखरखाव के झझट मे पुन रचना के प्रति उदासीनता ही उसकी नियति हुई।

एक बार मैने किसी की बात से खिन्न होकर सबधित व्यक्ति से अपना रोष व्यक्त कर दिया था। प्रसगवश बाद मे ताऊजी को यह बताया। उन्होने पूरे धैर्य से मेरी बात सुनी।

बेटी ! अपने शब्दो का मूल्य तुम स्वय पहचानो। क्यो अपने शब्दो को वृथा व्यय करती हो। यह शब्द तो तुम्हारे अपने ब्रह्म है। इन्हे कुपात्र पर न्योछावर करके क्यो अनर्थ करती हो। इन शब्दो मे अनन्त सृजन की शक्ति है इन्हे सँजोकर इनसे रचना करो। ध्वस मे मत डालो।

ताऊजी से प्राप्त यह शब्द दर्शन कितना दिव्य है। इसका प्रभाव भी मेरे ऊपर आज तक है जो आज कितने निरर्थक भाषण से मुझे बचा लेता है और कितने ही अप्रिय प्रसगो से उबरने मे सहायक होता है।

एक बार मैं अपने विद्यालय से घर वापस आ रही थी। गेट के पास ही सडक पर ताऊजी छाता लगाये हुए आते दिखे मैं उधर बढ़ गई। प्रणाम करके मैंने पूछा- आज आप इतनी जल्दी इतनी तेज धूप मे ही घर जा रहे हैं ?

अरे बेटी ! आज हमारे ससुर जी का श्राद्ध है सो हम अपनी सास के आज मेहमान हैं। अब वही भोजन करेगे फिर एक रुपया भी मिलेगा। और यह कह कर उन्होने अपनी उसी बाल सुलभ हँसी की छटा बिखेर दी उनकी ताम्बूल रजित सुघड दत पक्ति दमक उठी।

एक प्रसग और याद आ रहा है। पूज्या ताई जी यानी श्रीमती नागर के निधन के बाद पिताजी के साथ मैं भी उनके पास गई। वे अपनी कोठी के दालान मे तखत पर बैठे थे। वही पास ही पानदान रखा था। वे खरबूजे की फाँके काट काट कर खा रहे थे जैसे कही शून्य मे खोये हुए से। पिताजी को अपने पास ही बिठा लिया। दोनो लोग कुछ कुछ बोलते रहे। ताऊजी कह रहे थे भइया अब हमारे नखरे उठाने वाला कोई नही रहा ! और भी कितनी सरसता से वे ताईजी को याद कर रहे थे ।

ताऊजी का सहज स्वभाव आत्म प्रदर्शन से विरत बेबाक व्यक्तित्व हर एक के मन पर एक बिम्ब छोड देता था। उनका सदैव सदाशयी व्यवहार दूसरे को दिखाने के लिए नही उनके अपने तोष का साधन था। किसी के द्वारा उन्हे किये गये प्रणाम के प्रत्युत्तर मे खुश रहो सुख पाओ यश पाओ और भी क्या क्या वे स्वगत भाषण करते रहते। दूसरा सुन रहा हो या फोन का चोगा उन्होने स्वय भी रख दिया हो इससे उनका कोई सरोकार नही रहता। सार्वजनिक सभाओ एव सम्मेलनो मे भी भाषण देते समय वे कैमरे से बेखबर माइक से उदासीन अपनी रौ मे रमे बोलते रहते।

उनका कहना था कि लेखन प्रक्रिया मे वे कभी भी अपने मन के स्वामी नही रहते इतने पात्रो की भावनाओ सवेगो से खेलते हैं उन्हे झेलते हैं कि वे पात्र उनके मन को हिला देते हैं। 'कभी कभी तो कोई कोई पात्र बहुत रुलाता है। एक बार उन्होने कहा था। यथार्थ जीवन से ली गई उनकी कृतियो के पात्रो की जीवतता भावुकता और सवेदनशीलता उनके हृदय के अतरतम का निचोड़ थी।

महादेवी जी ने लिखा है मैं कवि हूँ यह सम्पूर्ण अभिमान जब पुजीभूत होने लगता है तो कोई भी व्यवधान भारी पडने लगता है। अर्थात सृजनकार अभिमान का धनी होता है। नितात सरल हृदया महादेवी जी ने भी इसे स्वीकार किया है। आदरणीय ताऊ जी मे मैंने इस अभिमान का कभी किंचित लेशमात्र भी नही महसूसा। सरल सहज स्नेह वात्सल्य और आत्मीयता से परिपूर्ण भावुक हृदय के धनी ताऊजी की बाल सुलभ हँसी और नितात आत्मीय वार्तालाप वास्तव मे बिरल था।

☆

एम०सी०

एम०सी० एक महान व्यक्ति का अति सक्षिप्त सबोधन। मूर्धन्य सपादक श्री एम० चलपति राव को इसी नाम से जाना जाता था। शायद अपना यह नामकरण उन्होने स्वय ही किया हो। अपने अतरग जन के पत्रो का समापन वे M C लिख कर ही करते थे। मैंने अपने चाचा को लिखे गये पत्रो मे भी यह देखा था। चाचा जी तैराकी मे माहिर थे। प्रतियोगिताओ मे विजेता और उत्कृष्ट कोटि के प्रशिक्षक भी। हम सब भाई बहनो को हमारी माँ सहित उन्होने ही तैराकी सिखाई थी। मेरे महिला चैम्पियनशिप जीत सकने का वास्तविक श्रेय उन्ही को था। वे पेशे से पत्रकार थे और नशनल हेरल्ड अखबार मे सह सपादक थे जहॉ श्री चलपति राव प्रधान सपादक थे। एक बार अमेरिका से एक पोस्टकार्ड श्री चलपति राव का चाचा जी के नाम आया था यू शुड सी स्विमिंग पूल्स हियर. एम सी। ऐसे ही मेरे साथ खीचा गया अपना एक चित्र उन्होने मुझे दिया था उस पर भी इतना ही लिखा था काइड रिगार्डस एम०सी०। वे सार्वभौमिक एम०सी० बन गये थे। उनका यह सबोधन उनके प्रति जितना आत्मीय अनौपचारिक था उससे कम सम्मानशील भी नही था। मैं भी परोक्ष मे उन्हे एम०सी० कह कर ही सदर्भित करती थी। प्रत्यक्ष और पत्रो मे सर से सबोधित करती थी। बाद मे बाबा' भी कहने लगी थी।

हमारे घर मे पिताजी और चाचाजी के वार्तालापो मे कभी कदा एम०सी० का जिक्र होता या तो हेरल्ड मे लिखे गये उनके किसी धाँसू सम्पादकीय की चर्चा या फिर चाचा द्वारा किये गये किसी प्रसग विशेष को लेकर पर मुझे उन्हे देखने का कभी अवसर नही मिला था। उनके सम्पादकत्व के कीर्तिमान उनकी पडित नेहरू से अतरगता उनकी अपनी विचित्र आत्यन्तिक पसद नापसद उनका अग्रेजी भाषा पर अद्वितीय अधिकार उनकी कलम की बादशाहत आदि के विषय मे मैंने बस कुछ कुछ सुन ही रखा था।

वह मेरी पहली गुडिया प्रदर्शनी थी पुतुल परिकर हजरतगज के सूचना भवन मे। उस समय मेरी किसी भी गुडिया की आयु एक वर्ष की भी नही थी। मेरा यह शौक मात्र कुछ माह पुराना ही था। लेकिन न जाने किस शुभ मुहूर्त मे मेरी गुडियो का जन्म हुआ था कि उनकी सूर्य रेखा बड़ी बलवान थी। सभी खूब यश प्रसिद्धि लेकर सृजित हुई थी।

फरवरी १९६९ मे उत्तर प्रदेश डिग्री कालेज मे अध्यापको की एक माह तक चली एकमात्र हडताल मे समय के सदुपयोग के लिए मैंने गुड़िया बनाना सीखना शुरू किया था।

सयोग से मेरे द्वारा बनाई गई दूसरी गुडिया ही अन्य सभी छात्राओ की गुडियो की अपेक्षा इतनी सुन्दर सृजित हुई कि मेरी शिक्षिका मेरे प्रति कुछ अधिक उत्साहित और आशावान हो गई। उन्होने मुझे कतिपय कठिन कठिन पात्रो को मूर्तमान करने की प्रेरणा दे डाली। परिणामत चतुर्भुजी सरस्वती देवदासी दो ऑखे बारह हाथ की खिलौने वाली और जाने कौन कौन से चरित्र मैंने निर्मित किये। कवियो की पक्तियो पर एक एक नायिका और उसकी अलग अलग स्थितियॉ नृत्यकला का विकास मदिरो से होटलो तक की नृत्य यात्रा आदि का चित्रण भी मैने गुडियो के माध्यम से किया।

दैवयोग से उसी समय मेरे भाई ने कैमरा खरीदा था और अपने बाल सुलभ उत्साह मे उन्होने मेरी गुडियो के कुछ चित्र खीच डाले थे। कैमरे की रील नैनीताल मे पूरी भर पाई जहाँ हम गर्मी की छुट्टियो मे सपरिवार गये थे। यह रील वही धुलवाई गई। चित्र थे तो छोटे छोटे लेकिन आये बहुत स्पष्ट और सुदर थे। गर्मियो मे तत्कालीन राज्यपाल श्री गोपाल रेड्डी जी भी उन दिनो नैनीताल मे थे। भाई ने यो ही हल्के फुल्के अदाज मे कहा कि यदि तुम अपनी गुडियो के ये चित्र गवर्नर साहब को दिखा दो और कहो कि तुम इनकी नुमाइश करने जा रही हो तो वे उदघाटन करने की सहमति दे देगे। कुल १० १५ गुडियो का सृजन। मैंने प्रदर्शनी की बात तो स्वप्न में भी नही सोची थी फिर भी जब अन्य भाई बहनो के साथ पिताजी ने भी स्वर मिला दिया तो मैं जैसे ललचा गई। सशकित मन से गवर्नर साहब से मिलने का समय माँगा दो दिन बाद का समय उसी दिन मिल गया वही बोट हाउस क्लब मे मिलने के लिए। बडी बेसब्री से दो दिन गुजारे। तीसरे दिन नियत समय पर अपने चित्र लेकर जब मिलने पहुँची तो बिना किसी भूमिका के चित्र दिखा कर (महामहिम से) मन्तव्य व्यक्त कर दिया और मेरे हर्ष और आश्चर्य की सीमा न रही जब महामहिम गोपाल रेड्डी जी ने न केवल लखनऊ मे प्रदर्शनी के उदघाटन की सहमति दे दी बल्कि डायरी दिखवा कर उद्घाटन का दिन भी निर्धारित कर दिया १२ सितम्बर। मैं औपचारिकता पूरी करके वापस आई तो वही झील के किनारे भाई आदि टहल रहे थे। मेरी भाव भगिमा से ही उन्होने भेट का अजाम ताड लिया था। फिर तो सभी ने भॉति भाँति से अपने हर्ष उदगार व्यक्त किये। मुझे चिढ़ाने से लेकर सर चढ़ाने तक। अब नैनीताल मे मेरा मन नही लग रहा था। मैं जल्दी से जल्दी लखनऊ आकर कुछ नवीन सृजन करना चाहती थी और अपनी प्रदर्शनी की तैयारी मे जुटना चाह रही थी। उसी वर्ष सबसे छोटी बहन ने हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की थी। उनका लोरेटो कान्वेन्ट मे प्रवेश भी मुझे कराना था वापस लौटने का कार्यक्रम जल्दी ही बन गया।

उसके बाद मेरी जो प्रदर्शनी लगी उसने लखनऊ मे खूब धूम मचाई। मुझे पर्याप्त प्रसिद्धि मिली और मेरे माता पिता परम पुलकित हुए। सभी अखबारो की सुर्खियो मे तस्वीरो सहित नुमाइश के बारे मे छपा था। केवल नेशनल हेरल्ड ने एक भी पक्ति नही

छापी थी यद्यपि चाचा जी तब भी हेरल्ड मे ही थे। शुरू मे प्रदर्शनी तीन दिन के लिए लगाइ गई थी लेकिन तीनो ही दिन पूरे समय हाउस फुल जैसी स्थिति रही। अत जनता की माँग पर सूचना केन्द्र से चौथे दिन की इजाजत माँगकर प्रदर्शनी एक दिन के लिए बढ़ा दी गई और यही चौथा दिन मेरे लिए निहायत मुबारक साबित हुआ।

तब तक 'नेशनल हेरल्ड दिल्ली से भी छपने लगा था और एम०सी० प्रधान सम्पादक के रूप मे दिल्ली चले गये थे। वे यदा कदा लखनऊ आते रहते थे। लखनऊ मे कोई अन्य सज्जन स्थानीय सम्पादक थे। इत्तफाक से उस चौथे दिन एम०सी० लखनऊ आये और उन्हे किसी माध्यम से पता चला कि लखनऊ मे कोई गुडिया प्रदर्शनी लगी है। मुझे कालान्तर मे यह पता चला कि गुडियो मे उनकी बड़ी रुचि थी और इस रुचि को जगाने भड़काने वाले उनके अनन्य मित्र श्री शकर थे जो कि दिल्ली के अन्तर्राष्ट्रीय गुडिया सग्रहालय के सर्वेसर्वा थे। दिल्ली मे हेरल्ड भवन और गुड़िया सग्रहालय की बहादुरशाह जफर मार्ग पर अगल बगल इमारते हैं। शकर जी अपनी भाँति भाँति की गुडियो का तस्किरा एम०सी० के साथ किया करते थे। अत एम०सी० को लखनऊ मे गुड़िया प्रदर्शनी देखने का लोभ होना स्वाभाविक था। उन्होने अपने समाचार सपादक श्री बहल से अपनी इच्छा व्यक्त की होगी क्योकि बहल जी ही उन्हे लेकर मेरी प्रदर्शनी मे आये थे। आगे पीछे दो चार छुटभैये पत्रकार भी थे। उन्ही मे से किसी ने आगे बढ़कर मुझे बताया कि एम०सी० पधार रहे हैं। मैं उन आगन्तुको मे एम०सी० को छाँटने की चेष्टा करने लगी तभी मेरी सहायता मे उनके पीछे से किसी ने उनकी ओर इशारा कर दिया। मैंने अभिवादन किया उन्होने कुछ उत्तर दिया किन्तु मैं उनके शब्द न पकड सकी। मात्र उनकी बड़ी गोल गोल आँखो मे झलका स्वीकृति-भाव ही मेरे पल्ले पड़ा। मैंने उन्हे गुडियो की ओर अग्रसर करना चाहा दोनो हाथ कक्ष की ओर बढाकर। वे सामने रखे ट्रैफिक कानिस्टिबिल (गुड्डा रूप मे) को देखकर रुक गये। उसे निहारा फिर उसके द्वारा बताये गये सकेत के अनुसार दरवाजे के अदर घुसे। यह गुड्डा कानिस्टिबिल इसी आशय से बनाया और उस उपयुक्त स्थान पर सजाया गया था।

अदर जाकर एम०सी० एक एक गुडिया को जितने ध्यान से देख रहे थे उनकी दृष्टि बचाकर मैं उनकी आकृति को उससे कम ध्यान से नही पढ़ रही थी। लम्बा बलिष्ठ शरीर सर बालो से हीन। बडा सा चेहरा और उसी के अनुपात मे नाक और ओठ। आँखे कुछ ज्यादा बड़ी और गोल जिसकी ओर भरपूर देख ले उसे अदर तक कँपा डालने मे सक्षम। पतलून कमीज और सैंडल पहने हुए। कालर के नीचे का बटन भी खुला हुआ। कुल मिलाकर कपडो के प्रति कुछ उदासीनता का सा भाव। एक एक पैर जमा जमा कर वे हर गुड़िया के पास ठहर रहे थे। मैंने गुडियो के माध्यम से नृत्य का इतिहास इगित करना चाहा था उन्हे भरतनाट्यम वाली गुड़िया अधिक भाई थी उन्होने कुछ कहा था जिसमे से मैंने केवल इज मूवमेन्ट समझा था। तभी मुझे यह आभास हुआ कि उनका सम्भाषण

समझना हर किसी के बस की बात नही है। उनके कठ मे कुछ नैसर्गिक कठिनाई थी चाचाजी ने बताया था। नृत्य भगिमाओ को देखते देखते अचानक वे श्री बहल की ओर घूम पडे और उनस जानना चाहा कि क्या उन्होने हेरल्ड मे इसका कवरेज छापा है ? बहल जी न भी नही कह सके थे। एम०सी० ने श्री बहल के चेहरे पर अपलक दृष्टि गडा दी उन नेत्रो का सामना करने का साहस दु साहसी के पास भी शायद ही होगा। श्री बहल की मुखमुद्रा देखने योग्य थी लगा गश खा कर गिर न पडे कही।

एकदम कातर भाव से बोले सर सर टुमारो !

नाउ टुमारो! एम०सी० ने घुडका।

आस पास वाले ठिठक कर पीछे हो गये। बहल जी स्तब्ध खडे रहे। एम०सी० आगे बढ गये। सारी गुडियो को देखने के बाद जब वे बाहर निकलने लगे तो यथावत उनके सामने भी नोटबुक बढा दी गई। एम०सी० ने मोटे मोटे अक्षरो मे लिखा

I Have seen many dolls exhibitions and this is the best I have seen For variety and liveliness of expression and conception it is hard to beat

इसके बाद मुझसे अंग्रेजी म बोले तुम अपनी प्रदर्शनी दिल्ली लाओ। मै देखूँगा कि प्रधानमत्री इसका उदघाटन करते है। वैसे भी दिल्ली आने पर मुझसे मिलना। जो मेरे सो राजा के भी नही वाली सम्पन्नता की स्वामिनी मै अपने आप को मान रही थी उस समय! एम०सी० प्रदर्शनी देख कर चले गये हमने भी रात मे ही सारी गुडिया समेट ली। अगले दिन नशनल हरल्ड मे सचित्र समाचार छपा था। इसी समाचार को पढकर ब्रिटेन की श्रीमती स्नोडन ने जो कि अपन पति के साथ उन दिनो भारत मे थी सम्पक किया और बाल दिवस पर फूलबाग कानपुर मे मेरी प्रदर्शनी आयोजित करवाई। इसका उदघाटन भी राज्यपाल श्री गेपाल रेड्डी ने किया था।

कुछ दिना के बाद गाधी शताब्दी के अवसर पर हमारा दिल्ली जाना हुआ। हमने गुडिया सग्रहालय देखने का कार्यक्रम बनाया और एम०सी० से मिलने का भी। एम०सी० हमे स्वय वी०आई०पी० द्वार से गुडिया सग्रहालय मे ले गये। वहॉ श्री शकर से मेरा परिचय करवाया और दोनो लोग हमे गुडिया दिखाने लगे। देश विदेश की गुडिया बडी बडी हस्तियो को भेट दी गई गुडियॉ वहॉ थी। हाथ से बनी कुछ गुडियॉ भी थी लेकिन मुझे बराबर यह लगता रहा कि भारतीय गुडियो का प्रतिनिधित्व बहुत कमजोर है। कुछ गुडियो पर टिप्पणी भी हुई और उसके बाद एम०सी० ने बडे स्पष्ट शब्दो मे श्री शकर से कहा शकर ! हर वर्स्ट इज बेटर दैन योर बेस्ट । शकर जी ने कधे उचकाए मुँह बिचकाया और सिर को एक झटका दे दिया। एम०सी० ने आगे कहा यू विल सी ह्वेन शी ब्रिग्स हर इक्जीबीशन टु डेलही। शी विल ब्रिग। विल पर उनका विशेष स्वराघात था। हम घूम फिर कर लखनऊ वापस आ गये।

अब मेरी एक ही लगन थी दिल्ली मे प्रदर्शनी करने की। कुछ और गुडियाँ बनाने गैलरी बुक कराने आदि मे शायद दो वर्ष लग गये थे।

इस बीच जब भी मैं दिल्ली जाती तो एम०सी० से मिलना मदिर जाने जैसा नियम बन गया था। एम०सी० कितने भी व्यस्त हो पर वे मुझसे न मिले हो ऐसा कभी भी नही हुआ। कई बार तो अति विशिष्ट जन उनके पास बैठे रहते और वे मुझे वही बुला लेते फिर हर एक से मेरा गुडिया विशेषज्ञ समाजशास्त्री के रूप मे परिचय करवाते। कितने ही विदेशी विद्वानो राजनयिको से मै उनके कक्ष मे मिली थी। हर बार वे मेरी गुडिया प्रदर्शनी की तैयारी की प्रगति के विषय मे पूछते थे।

एक बार जब मैने उन्हे बताया कि आल इण्डिया फाइन आर्टस एण्ड क्राफ्टस सोसाइटी की गैलरी मुझे मिल गई है प्राय आठ माह अग्रिम बुकिंग हुई है तो वे बहुत सतुष्ट हुए। उसके बाद उन्होने मुझे उनसे बराबर सम्पर्क पर रहने का आदेश दिया। उदघाटन की जिम्मेदारी तो उनकी ही थी। उस समय सचार के साधन इतने उन्नत नही थे। लेकिन उन्होने यह व्यवस्था कर दी थी कि नेशनल हेरल्ड के ट्रान्समीटर पर मेरा सदेश तुरन्त उन्हे भेज दिया जाये और उनका भेजा हुआ मुझे फोन पर सुना दिया जाये।

प्रदर्शनी नवम्बर के प्रथम सप्ताह मे ही होनी थी इसकी स्मारिका लखनऊ मे छपी थी। मैने २५ सितम्बर को उन्हे अपनी प्रगति की सूचना देते हुए उदघाटन आदि के विषय मे पूछा ताकि स्मारिका मे छाप सके। ३ अक्टूबर का एम सी का पत्र आया–

October 3 1972

Dear Abha

Your letter of September 25 I had been waiting to hear from you

I have discussed the exhibition with Mr Kripalani our News Editor and with Mr Joshi our Chief of the News Bureau Both of them will keep it in mind

Nothing can be fixed before the A I C C session Then we shall have to find out the Prime Minister s and the President s programme I shall let you know if you need come before November 9 Just now I do not think you need come

Will you arrange the exhibits on November 9 or November 8 Is the exhibition to be opened on November 10 or November 9 ?

I regret I have to miss your local exhibition

I am told on November 9 15 there will be many M P s present in Delhi

Yours Affectionately

Sd/

(M Chalapathi Rau)

इसके बाद २५ अक्टूबर तक मुझे कोई सूचना नही मिली तो पुन उदघाटनकर्ता के लिए मैंने उनसे अपनी लिखित चिन्ता व्यक्त कर दी। उन्होने ३० अक्टूबर को (शायद इसी दिन उन्हे मेरा पत्र मिला था) एक पत्र मुझे लिखा–

October 30 1972

Dear Abha

Your letter of October 26 You must have got my letter of October 27 The Vice President had been fixed up and there could be no changing of dates and dropping him

You can issue from Lucknow itself as many invitations to M P s diplomatic missions artists etc and newspapers (editors and art critics)

The Vice President wants all available literature about the exhibi tion- rather immediately

You may send a few invitation cards to us also

Yours affectionately

Sd/

(M Chalapathi Rau)

इस बीच मुझे उनका २७ अक्टूबर का पत्र भी मिल गया जो इस प्रकार था–

October 27 1972

Dear Abha,

I am sorry for this delay in writing to you But we have not neglected the business of finding a personage to inaugurate exhibition

The PM was impossible On the evening of Parliament session she is never sure of her time The President would have been happy but his programme had been fixed The Vice-President, next in our order agreed and the message has been conveyed to you by teleprinter

So we shall be waiting for you on November 7

Yours affectionately

Sd/

(M Chalapathi Rau)

इधर मैं गुडियो को अतिम रूप देने मे व्यस्त थी। दिल्ली जाने से पूर्व अक्तूबर मे एक प्रदर्शनी लखनऊ मे भी होनी थी जिसका उदघाटन श्रीमती महादेवी वर्मा जी के कर कमलो से सम्पन्न हुआ था। इसी दौरान मुझे एम०सी० का उपरोक्त पत्र मिला कि ससद का सत्र होने वाला है और ससद सत्र की पूर्व सन्ध्या पर प्रधानमत्री अति व्यस्त रहती हैं अत

वे राष्ट्रपति के लिए प्रयत्नशील हैं जो कि उस समय बगलोर मे थे। दो तीन दिन बाद ट्रान्समीटर पर सदेश आया कि राष्ट्रपति का उस दिन कोई कार्यक्रम दिल्ली से बाहर लगा है अत मै अपनी अगली पसद उन्हे सूचित करूँ। समय की कमी और निमत्रण पत्र तथा स्मारिका मे नाम छपवाने मे विलम्ब के भय से मैने उपराष्ट्रपति डॉ० गोपाल स्वरूप पाठक के लिए अपना मन उन्हे बताया ही था पर एहतियातन डॉ० कणसिह का नाम भी उन्हे भेज दिया था। डॉ० कर्णसिह जब मैने एम०ए० की उपाधि ली थी उस वर्ष लखनऊ विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के मुख्य अतिथि थे और तभी से मैं उनके व्यक्तित्व और वाकशक्ति दोनो से ही परम प्रभावित थी। एक दिन के अतर से मुझे फिर सदेश मिला कि उपराष्ट्रपति और डॉ० कर्ण सिह दोनो ही महानुभावो ने मेरी गुडिया प्रदर्शनी मे उदघाटन के अवसर पर पधारने की स्वीकृति दे दी है। दोनो के नाम स्मारिका मे छाप दिये गये।

मेरा और मेरी गुडियो का भाग्य। उपराष्ट्रपति महामहिम डॉ० पाठक जी ने मेरी गुडियो की प्रदर्शनी का उदघाटन किया केन्द्रीय नागरिक उड्डयन मत्री डॉ० कर्णसिह की अध्यक्षता मे। एम०सी० लाख आग्रह के बाद भी मच पर नही आये। प्रसन्न गौरवमयी मुद्रा मे श्रोताओ के मध्य बैठे रहे। प्रदर्शनी एक सप्ताह तक चली और बीच का एक दिन छोडकर हर दिन एम०सी० हेरल्ड कार्यालय से उठकर सीधे मेरी प्रदर्शनी मे आते विजिटर्स बुक पढ़ते कुछ देर बैठते पिताजी एव अन्य प्रदर्शनी मे आये गणमान्य व्यक्तियों से बाते करते और अगले दिन की शुभकामना एव वहॉ आने का आश्वासन देकर जाते। दिल्ली के सभी अखबारो टी०वी० रेडियो आदि मे खासी ख्याति मुझे मिली थी। हर दैनिक अखबार ने तो सचित्र खबरे छापी ही थी साप्ताहिक पाक्षिक पत्रिकाओ मे भी हफ्तो बाद तक आलेख आते रहे थे। बाद मे सूचना केन्द्र द्वारा बनाई गई न्यूज़ रील सिनेमाघरो मे दिखाई गई थी। अपनी प्रदर्शनी के दौरान ही एक दिन मैने प्रदर्शनी के प्रति अपनी प्रसन्नता एव सतोष व्यक्त करते हुए एम०सी० के प्रति अपनी कृतज्ञता उन्ही से व्यक्त की।

बट प्राइममिनिस्टर कुड नाट कम। एम०सी० ने कुछ अफसोस सा जाहिर किया।

आई एम रियली वेरी हैप्पी मै फिर चहकी। एम०सी० चुप रहे।

अगले दिन हम अपनी प्रदर्शनी मे बैठे थे। उस समय दीर्घा मे भी कम ही लोग थे कि एकाएक कोई १५ २० लोग दीर्घा मे घुस आये और गुडियो के आस पास टार्च जैसा कुछ यत्र लगाने लगे। मै तिलमिला उठी। Please Dont Touch यह वाक्य जगह जगह पर लिखा हुआ भी लगा था। मै उन टार्च वालो के पास पहुँची प्रतिरोध व्यक्त करते हुए एक व्यक्ति ने बताया कि वे इन्टेलिजेन्स विभाग के अधिकारी कर्मचारी है। प्रधानमत्री आने वाली हैं अत वे सुरक्षा की दृष्टि से यह सब कृत्य सम्पन्न कर रहे है। अब मैं भी चौकन्नी हो गई थी। मैने पिताजी को बताया। वे वही दीर्घा मे मेरे साथ थे। मैंने देखा बाहर भी बगीचे पेडो आदि के आस पास काफी लोग बिखर गये थे। आसपास वायरलेस और वाकी

टाकी सक्रिय थ। वही सूचना आइ कि प्रधानमत्री को ससद भवन से तीन मूर्ति भवन जाना है बीच मे वे दीर्घा मे होती हुई जायेगी। १५ २० मिनट बाद प्रधानमत्री जी आ गई। मै इतनी जल्दी फोटो आदि की व्यवस्था तो कर ही नही सकती थी। अपनी एक स्मारिका उनकी आर बढ़ा दी। प्रधानमत्री ने उस पर हिन्दी मे इन्दिरा गाँधी अकित करके मुझे वापस कर दो बधाइ हो ।

उनके जाने क बाद एम०सी० आये। उन्होने कोई प्रश्न नही किया। मैने ही उन्हे यह समाचार दिया। वे बोले बट शी वाज मच टू टाइट।

पता नही श्रीमती इन्दिरा गाधी को बुलाने के पीछे क्या था। मेरा मन रखना या अपना वचन शायद दोनो ही। स्वाभिमान दृढ़ता वचनसार्थकता समाज के नितान्त मूल से सरोकार पारदर्शी सामाजिक राजनीतिक विश्लेषण एम०सी० के व्यक्तित्व के समृद्ध पक्ष थे। जीवन मे किसी भी रूप मे उन्होने समझौता नही किया। जिसे वे पसद करते थे वह उनके निकटस्थ प्रथम घेरे मे होता था। जिससे रूठ गये उसका फिर किसी वृत्त मे कोई स्थान नही। अपनी गुडियो के प्रभाव से मैं उनके प्रथम घेरे मे थी और अत तक बनी रही हालाँकि उनके व्यक्तित्व और सुन हुए कृतित्व से आशकित मैं बराबर रहती थी। पिताजी अक्सर मुझे चिढ़ाते भी रहते थे बहुत सर चढा रखा है उन्होने तुम्हे। देखना किसी दिन सर झटक देगे और तुम धडाम से गिरोगी। ईश्वर की कृपा से वह दिन कभी नही आया।

याचना एम०सी० ने कभी भगवान से भी नही की मानव की क्या बिसात। एक बार मेरी जिज्ञासा पर उन्होने अपने नाम का अर्थ स्पष्ट करते हुए बताया था कि वेकटाचलपति का चलण्ति लघुरूप है अर्थात तिरुपति का पर्याय। उसी प्रसग म वे बता रहे थ कि एक बार वे तिरुपति के दर्शन करने गये विशिष्ट श्रद्धालुओ की श्रेणी मे उन्हे भगवान तिरुपति के सामने प्रथम पक्ति मे खडा कर दिया गया। वहाँ वे प्राय ४ ५ मिनट खडे रहे। कहने लगे आई वाज फस टु फेस वेरी नियर टु गॉड उन्होने कहा कि उनकी समझ मे ही नही आया कि वे इश्वर से क्या माँगे। थोडी देरतक असमजस मे खडे रहने के बाद आई सेड ओ०के० गुडबाय तिरुपति एण्ड आई केम बैक। सतुष्टि और सपूर्णता के एहसास की परिपूर्णता और इसी परम अनुभूति एव सुदढ़ आत्म विश्वास ने उन्हे कभी किसी ज्योतिषी या भविष्यवक्ता का भी मुखापेक्षी नही बनने दिया। नग ज्वाहरात आदि पहनना उनके लिए उपहास का विषय था

बिहार के एक मूर्धन्य नेता के बारे मे उन्होने बताया था वे न केवल दसो उँगलियो मे भाँति भाँति की अँगूठियाँ धारण किये रहते थे बल्कि उनक वक्ष पर भी तमाम रत्न आभूषण रहते थे। उनकी बडी अजीब आदत थी। वे हमेशा मुझे आलिगन करके मिलते थे। और तब उनके वक्ष के आभूषण मुझे आहत कर देते थे। एम०सी० ने बडी पीडामय मुखाकृति बनाकर यह स्पष्ट किया था और फिर एक क्षण बाद शरारत भरी मुस्कान के

साथ उन्हान उस रहस्योदघाटन किया हो स्टिल हा डायड एण्ड दैट टू सो सडेन एण्ड बिफोर आल द पब्लिक। मरे हाथ म भी एक नीलम की अँगूठी थी। मैंने ढिठाई से उन्हे दिखा कर कहा दखिये ! एक अँगूठी तो मै भी पहने हूँ। वे मुस्कराते हुए सिर हिलाने लगे

म ता जब दिल्ली जाती थी उनसे मिलती ही थी वे भी जब लखनऊ आते यद्यपि उनका आगमन बहुत कम हाता था मेरे और पूज्य पिता जी के आग्रह पर वे हमारे घर अवश्य आते। पहली बार मैंने उनस लिखकर पूछा था आई होप यू विल इन्ज्वाय ए वेजेटरियन खाना विद अस ? उनका एक पत्र आया था–

November 23 1970

Dear Abha

It was sweet of you to invite me to your exhibition of dolls opened by Dr Mahishi and I am extremely sorry I could not be in Lucknow at that time

I have seen the brochure and the show seems to have been good

I shall be in Lucknow one day and then I shall see the dolls and then I shall be glad to eat at your place

I like vegetarian food and you can be sure of it I am an ex vegetarian and gave up vegetarian food only because I could not get good vegetarian food in hotels Even now I am mainly a vegetarian

I wish you further successes

Yours

Sd/

(M Chalapathi Rau)

उनके एक्स वजेटेरियन म हमे बडा मजा आया और तब से न जाने कितनी बार हमने अलग अलग लोगो के साथ इसका प्रयोग किया है एम०सी० को याद करते हुए।

एक बार मै दिल्ली मे एम०सी० के पास उनके कार्यालय मे बैठी थी तभी किसी दूतावास से कोई विदेशी प्रतिनिधि उनसे अपनी पूर्व निर्धारित मुलाकात के लिए आ गये। एम०सी० ने उनसे मेरा परिचय कराया मेरी गुडियो के माध्यम से फिर मुझसे कहने लगे कि मुझे अपने पास गुडियो के कुछ चित्र अवश्य रखने चाहिये। यह बात सभवत दिसम्बर मास की है। मैंने अगले वर्ष यानी जनवरी म उन्हे नववर्ष शुभकामना सदेश एक बारह पृष्ठो वाले कलेण्डर के माध्यम स भेजा जिसम हर पृष्ठ पर मेरी गुडियो का एक एक चित्र लगा था। कलेण्डर उन्हे बहुत भाया उत्तर मे उन्होने मुझे लिखा।

January 3 1970

Dear Abha

I have been pleasantly surprised to receive your New Year greetings and of the many New Year greetings I have been receiving yours seem to be the kindest and most sincere The calendar is exquisitely done and I propose to show it to as many people as possible I must thank you for the trouble

I am glad to read of your Kanpur exhibition so warmly and widely sponsored

My blessings and best wishes to you always

Yours sincerely

Sd/-

(M Chalapathi Rau)

मेरा एम०सी० को कभी भी लिखा गया कोई पत्र अनुत्तरित नही रहा चाहे एक लाइन का उत्तर ही आया हो। लखनऊ के कलाकारो पर मेरी लिखी एक लेख शृखला स्वतन्त्र भारत मे उन्ही दिनो छपी थी। एम०सी० ने कहा कि यदि मैं अग्रेजी मे लिखूँ तो वे उसे हेरल्ड मे छापना चाहेगे। उनसे एक दो कलाकारो के विषय मे चर्चा हुई। हमारी सहमति सुधीर खस्तगीर के लिए बन गई। उनके चित्र भी मैंने देखे थे। हमारे विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे भी बहुत से चित्र लगे थे। खस्तगीर जी के व्यक्तित्व से भी मैं प्रभावित हुई थी। मैने यथासाध्य कम समय लेकर लेख लिखा और चित्रो की व्यवस्था करके एम० सी० से एक पत्र द्वारा पूछा कि कब प्रकाशन हेतु प्रेषित करूँ ? पत्र उन्हे मिलने के अगले दिन ही ट्रान्समीटर पर सदेश आया This Wednesday for this Sunday next Wednesday for next Sunday लेख मैंने भेजा और पहुँचने के चौथे दिन रविवासरीय मैगजीन खण्ड मे वह प्रकाशित हो गया।

एक घटना सर्वथा भिन्न घटित हुई। नितान्त अविस्मरणीय। पूज्य पिताजी की एक पुस्तक तुलसीदास परिवेश प्रेरणा प्रतिफलन छपी थी। इसका लोकार्पण दिल्ली मे उपराष्ट्रपति महामहिम श्री जत्ती जी द्वारा होना था। पिताजी अन्यत्र व्यस्त थे मुझे पुस्तके लेकर भेज दिया। वहॉ पूरी व्यवस्था आयोजको द्वारा हो ही चुकी थी। मैने सोचा कि यदि मैं अपने प्रयास और यतकिंचित सम्पर्को से एक दो समाचार पत्रो मे पुस्तक की पूर्व समीक्षा विवेचना छपवा सकूँ तो पिताजी बडे प्रसन्न होगे। मैंने हिन्दुस्तान टाइम्स के एक वरिष्ठ समाचार सपादक से बात की। उन्होने यथा आशा समीक्षा और समाचार छाप दिया। हेरल्ड मे छपवाने के लिए एम०सी० के पास गई बिना समय लिए हुये। वहॉ पता चला कि वे किसी आवश्यक मीटिंग मे व्यस्त हैं। उसके बाद सम्पादकीय लिखवायेगे। इत्तफाक से एक वरिष्ठ सवाददाता श्री नजमुल जो कि लखनऊ के ही थे वहॉ बाहर कक्ष मे बैठे थे। वे मुझे

बखूबी जानते थे। चाचा जी के रिश्ते से सगी भतीजी जैसी मोहब्बत जताते थे और अपने को चचा कहलवाने का इसरार भी करते थे। मैने भी सोचा चलो चचा से ही काम चला लिया जाये। सो उन्हे पूरी कहानी समझा दी और उनसे पूर्ण रूप से आश्वस्त होकर कि कल सुबह अखबार देखना लौट आई। अगले दिन हेरल्ड मे समीक्षा तो दूर ऊपरी समाचार भी नदारद था। बडी खिन्नता हुई।

कोई तीन सप्ताह बाद फिर दिल्ली जाना हुआ पिताजी के साथ वे वहॉ अपने काम मे व्यस्त हो गये। मै एम०सी० से मिलने गई। वह समाचार हेरल्ड मे न छपने की घटना ताजे चित्र सी मेरे मन पर अकित थी। एम०सी० को बताया कि कैसे मै पिछली बार यहॉ तक आई और उनसे बिना मिले लौट गई और फिर अखबार मे कुछ छपा भी नही। एम०सी० ने मुझे बडे बडे लाल नेत्रो से देखा। मै अदर तक हिल गई।

सो यू ट्रायड यौर ओन रिसोर्सेज । और मेरी कुछ भी प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किये बिना उन्होने एक पूरा अखबार मेरे और अपने बीच मे तान लिया।

मैं हतप्रभ जड जैसी बैठी रही। एक एक क्षण भारी लगने लगा। अब क्या होगा ? आज उनके सर झटकने का मौका आ गया मैंने सोचा। अब मैं धराशायी होने ही वाली हूँ मुझे लग रहा था। क्या करूँ ? अतिम बार मुझे ही कुछ प्रयास कर लेना चाहिये वरना भी कौन सा भला होने जा रहा है अब मेरे मन मे आया। न जाने किस प्रेरणा से मैंने अतीव साहस जुटाया और एक झप्पा मारा अखबार नीचे हो गया हम आपसे मिलने आए हैं। आप पूरा अखबार अभी पढ़ेगे ? कुछ अनुनय कुछ खुशामद और कुछ जिद के साथ मैं मिनमिनाई मैं लखनऊ से आई हूँ मुझे आज ही वापस जाना है एम०सी० हँसने लगे। मेरी चेतना लौटी। उन्होने प्रसग से मुझे झिडका कोई भी बैठा था क्या फर्क पडता था मेरा पिछला कौन सा ऐसा अनुभव था जिसने मुझे अपने वहॉ आने की सूचना उन्हे भेजने से रोक दिया। गल्ती मेरी थी नुकसान भी मेरा ही हुआ था। माफी भी मैने माँगी। भविष्य मे न दुहराने का वचन भी मैने दिया और फिर सब कुछ सहज हो गया।

जीवन के अतिम पडाव पर उनका श्रीमती गाधी से भी कुछ मन तैभिन्‍य हो गया था और वे नेशनल हेरल्ड से अलग हो गये थे। १३ न० शाहजहाँ रोड पर उनका आवास था। अब मैं उनसे मिलने वही जाती थी। वहाँ उनका एक छोटा सा परिचर बसी था। मेरी बसी से अच्छी दोस्ती हो गई थी। मेरे जाते ही वह चाय बनाकर ले आता था। वैसे मुझे स्वय भी उनकी रसोई मे जाकर एक बर्नर वाले एकमात्र स्टोव पर चाय बनाने की छूट थी। बसी एम०सी० को बाबा कहता था। मुझे यह सबोधन बहुत अच्छा लगा और मैंने काफी स्वराघात देकर बड़े स्पष्ट रूप से पहली बार उन्हे बाबा से सबोधित किया। मेरे आशातीत रूप मे उन्होने उसे बडी आत्मीयता और प्रसन्नता से ग्रहण किया। मुझे अपने ऊपर ग्लानि हुई कि मुझे पहले यह सबोधन क्यो नही सूझा ? उन्हे मेरा बाबा कहना बड़ा अच्छा लगा था।

बाबा अपने को हमेशा आम आदमी का नुमाइंदा (man of the masses) मानते थे। रहन सहन वस्त्र वेषभूषा सभी मे उनके साधारण व्यक्ति होने की झलक रहती किन्तु विलक्षण मेधा के धनी ज्ञान गरिमा सिन्धु सपन्न शब्दावली के सकल आगार अभिव्यजना सम्राट जिस समय लेखनी हाथ मे ले लेते तो साक्षात सरस्वती प्रवाहित होने लगती। उनका सतोष उनका रोष मानो शब्दो मे साकार हो उठता। एक बार लखनऊ मे एक मदिरा निर्माता को काग्रेस का टिकट लोकसभा के लिए दे दिया गया। बावजूद काग्रेस के कर्णधारो के साथ अपने घनिष्ठ सबधो के उन्होने नेशनल हेरल्ड मे इसकी सख्त आलोचना की थी जिसम एक वाक्य था If men like V R Mohan are elected to parliament then the country at last can hope to get of more of Blacknight Kidwais and Gymkhana Patels । इसी चुनाव मे स्वतत्र उम्मीदवार श्री आनन्द नारायण मुल्ला चुनाव जीते थे। अब शायद न ऐसे लिखने वाले हैं और न वैसे जीतने वाले जाने कहाँ गये वे लोग ।

मत्रियो पर खर्च की जाने वाली भारी भारी धनराशि सरकारी खर्चे पर लम्बी लम्बी विदेश यात्राएँ और महँगे इलाज आदि से बाबा बड़े क्षुब्ध रहते थे। उन्हे यह सब जनता का शोषण और जन धन का दुरुपयोग प्रतीत होता था। उनकी अपनी तनख्वाह का लाखो रुपया हेरल्ड पर बकाया रह गया और उन्होने कभी उसे उगाहने के लिए किसी भी अस्त्र शस्त्र का प्रयोग नही किया अपने अखबार का तो लेशमात्र भी नही किया। जैसी नीयत वैसी बरक्कत। बाबा के प्राण पखेरू भी ऐसे उडे कि वे किसी के एक गिलास पानी के गुनहगार भी न हुए। घर से जाते हुए रास्ते मे कुछ कष्ट का अनुभव हुआ होगा उन्हे जब उन्होने वही उतर कर एक सडक किनारे के ढाबे मे एक प्याली चाय पी और उनके बाद जब उनका शरीर निर्जीव हुआ तो वे मात्र एक सामान्य जन एक वृद्ध के रूप मे पहचाने गये। बाद मे लोगो को पता चला कि वह साधारण वृद्ध व्यक्ति कितना विशिष्ट था कितना विशाल था। उसी समय बिहार के एक मत्री जी भी कोमा मे आ गये थे। किन्तु अस्पताल मे एक सप्ताह तक उनके अगो की विकल्पी मशीनो के सहारे उन्हे अखबारो मे सप्ताह भर से अधिक क्रिटिकल किन्तु जीवित के समाचार दिये जाते रहे। सरकार बनाम जनता का लाखो रुपया उन पर सोख्त हो गया होगा।

अतिम समय मे बाबा को क्या कष्ट हुआ कितनी देर हुआ उन्होने क्या सोचा क्या उनके मन मे आया होगा इसका कोई साक्षी भी नही था। बसी भी नही। लेकिन उन्हे वे तमाम यातनाएँ नही भोगनी पडी जिनसे उन्हे चिढ़ थी नफरत थी । यदि आत्मा कही है तो वह इस शान्त त्वरित मुक्ति से सतुष्ट अवश्य होगी ।

☆

प्रोफेसर सेवाराम शर्मा

जब कैसरबाग के बलरामपुर हाउस से हम लोग बादशाहबाग यानी विश्वविद्यालय के बगले मे रहने आये तो मै नवी कक्षा मे महिला विद्यालय मे पढ़ती थी। विद्यालय जाने के लिए डालीगज अमीनाबाद बस का साधन चुना गया। अगले दिन सुबह एक अनुचर मुझे सड़क गली मोड आदि पहचनवाता हुआ डालीगज मे पन्नालाल रोड के नुक्कड़ पर बस स्टैड पहुँचा आया। १० न की बस वही से चलती थी। मै सुविधापूर्वक डेढ़ आने यानी नौ नये पैसे मे कालेज पहॅुच गई। शाम को उसी बस से वापस लौटी तो बस स्टैण्ड से घर के रास्ते मे पता नही सीधे बिना सही मोड़ लिये चली आई या किसी मोड़ पर पहले ही मुड गई बहरहाल रास्ते के पहचान चिह्न कही खो गये और मै किसी अनजान जगह पर पहॅुच गई। अब क्या करूँ ? किसी से क्या पूछूँ कि मुझे मेरे घर का पता बता दीजिये। अजीब असमजस की स्थिति थी कि एक बडा जीनियस विचार दिमाग मे आया। मेरे बगले की झाडी के दूसरी तरफ निकटतम पडोसी डॉ० रमेश मोहन थे। सोचा क्यो न किसी से डॉ० रमेश मोहन का घर पूछ लिया जाये और बस फिर अपने घर पहुँचने मे क्या दिक्कत। सामने विश्वविद्यालय के कुछ छात्र खड़े थे यानी हमारे शैक्षिक अग्रज।

हमने बढ़कर एक से पूछा भाई साहब डॉ० रमेश मोहन साहब कहाँ रहते हैं ? उन्होने मेरी ओर आश्चर्य भरी दृष्टि से देखा।

आपके घर के बगलवाला घर ही तो है उनका उत्तर ने मुझे हतप्रभ कर दिया। मेरे पिताजी उस समय हबीबुल्लाह छात्रावास के वार्डेन थे। इसी नाते विश्वविद्यालय के इस घर मे हम रहने आये थे। यह छात्र उसी छात्रावास के थे और मुझे पहचानते थे। खैर शराबी भी अपना घर नही भूलता सो हम भी अपने घर किसी तरह बिना किसी से कुछ और पूछे पहुँच गये। उस अनजान जगह पर खडे खड़े हमे एक ऊँचे से चबूतरे पर खड़ा सुधासदन भवन दिखाई पड गया था जो कि हमारे घर के बिल्कुल पास था और हमे पहला लैंडमार्क बताया गया था।

इसी सुधा सदन मे हमारे गुरु श्री सेवाराम शर्मा जी रहते थे उनकी बड़ी पुत्री अरुण भी तब नवी कक्षा मे पढ़ती थी वह विज्ञान की छात्रा थी। हम बस के सहयात्री थे और बाद मे मित्र भी हो गये तथा हमारा एक दूसरे के यहाँ आना जाना शुरू हो गया।

मित्र न्याय से हमने अपने माता पिताओ को परस्पर चाची जी चाचा जी के सबध और सबोधन से युक्त किया। सामान्य मित्रता के साथ इन सबधो का निर्वाह भी यथावाछित होता रहा।

इस अवधि मे मुझे अरुण के घर की असामान्य परिस्थितियो का ज्ञान हुआ।

अरुण अपनी चार बहनो मे सबसे बडी थी। उनके इकलौते भाई के निधन के बाद उनके पिता अर्थात श्री सेवाराम शमा अपना मानसिक सतुलन खो बैठे थे। वे नितात अवसाद की स्थिति मे आ गये थे। आत्मघाती प्रयास भी उनके अवसाद के प्रतिफलन होते थे। उनका मानसिक इलाज चल रहा था। श्रीमती शर्मा यद्यपि डिग्रीधारिणी नही थी तथापि उन्होने बडी कर्मठता से घर को सम्हाला था। वे और उनके एक भाई मदन मामा छोटी छोटी नौकरियॉ करके गृहस्थी चला रहे थे। श्रीमती शर्मा प्रवेशिका और विद्या विनोदिनी की कोचिग कक्षाएँ चलाकर भी कुछ अर्थोपार्जन कर लेती थी। ऐसे दौर मे अरुण के साथ साथ पूरा परिवार ही करुणा और सहानुभूति का पात्र था। श्रीमती शर्मा मे दूसरो से सहायता प्राप्त कर लेने की निजी क्षमता थी। सुधा सदन के भूतल पर कुछ छात्र रहते थे। श्रीमती शर्मा को उनका भी बडा सहारा था।

दो चार वर्षो तक इस गृहस्थी को हमने इसी प्रकार देखा। गर्मी की छुट्टियो मे हम लोग तैराकी के लिए जाते थे। अरुण भी हमारे साथ जाती थी। इन्ही दिनो शायद सन ५७ की बात है हमे ज्ञात हुआ कि अरुण के एक भाई का जन्म हुआ है। इस बालक के जन्म ने शर्मा जी के जीवन मे पुन नव प्राण का सचार किया। वे अवसाद सागर से उबरने लगे।

अपनी मित्रता और मित्र परिवार के सम्पर्क-सबध के दौरान शर्मा जी के विषय मे हमे तमाम जानकारियाँ मिल चुकी थी। शर्मा जी जम्मू के रहने वाले थे। वे अत्यत मेधावी छात्र रहे थे हाईस्कूल से एम०ए० तक सदैव प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण होने वाले। तब एम०ए० और एलएल०बी० एक साथ पास कर सकने का प्रावधान था लखनऊ विश्वविद्यालय मे। शर्मा जी एक मात्र ऐसे छात्र थे जिन्होने दोनो एक ही वर्ष मे प्रथम श्रेणी मे प्रथम स्थान लेते हुए उत्तीर्ण किये थे जो कि एक कीर्तिमान था और आज तक टूटा नही है। हाईस्कूल इन्टर और बी०ए० उन्होने विज्ञान साख्यिकी और कला के अलग अलग विषय लेकर उत्तीर्ण किये। बाद मे अर्थशास्त्र मे एम०ए० किया और विधि स्नातक भी हुए। वे अग्रेजी बहुत अच्छी लिखते थे। सस्कृत और फारसी धारा प्रवाह पढ़ते थे। ऐसी विलक्षण प्रतिभा के धनी शर्मा जी की कुशाग्र बुद्धि का इकलौते पुत्र के क्षय से गोठिल हो जाना स्वाभाविक था। इसीलिए तुलसीदास जी ने कहा है कि सबसे भले वे मूढ़ जिनहिं न व्यापहि जगत गति ।

शर्मा जी के जीवन मे अब उमगें हिलोरे ले रही थी। उनकी कितनी ही सोई हुई इच्छाएँ अँगड़ाइयाँ लेने लगी। मनोचिकित्सक की भाषा मे वे अब अवसाद के बाद उन्माद की स्थिति मे थे अति प्रसन्न परम पुलकित। बालक के तीन चार वर्ष की आयु तक पहुँचते

पहुँचते वे उसे सब कुछ ही मुहैया करा देना चाहते थे। अपने लिए भी क्या कुछ नही खरीद रहे थे। फ्रिज रिकार्ड प्लेयर से लेकर सेकेन्ड हैड कार तक। पुस्तको का सग्रह कीमती कपडो का भडार पर्दे पलगपोश कुल मिलाकर घर का कायाकल्प हो गया था। इसके अतिरिक्त उनका एक और शौक भी जाग गया था भॉति भॉति के वाद्ययत्र जमा करने का बिना यह सोचे कि इनका वादक भी कोई है या नही। अब समय असमय सुरीले बेसुरे वाद्यो का आर्केस्ट्रा उनके घर मे सुनाई पडता रहता था। शर्मा जी को स्वय गाना गाने का शौक था। इसमे भी वे असुर ससुर का विचार नही करते थे। मै तब तक एम०ए० म पहुँच चुकी थी और शर्मा जी की छात्रा भी हो गई थी। एकाध बार उन्होने मुझसे भी सितार पर सहभागिता करने को कहा था। तब मैं सितार मे सीनियर डिप्लोमा कर रही थी किन्तु इस वाद्य मडली मे मेरा फिट न हो पाना ही स्वाभाविक था।

अब शर्मा जी प्राय मुखर ही रहते। वे अपनी तमाम कहानियॉ सुनाया करते। घर मे भी और कक्षा मे भी। पत्नी के लिए घरवाली शब्द का प्रयोग करते इस तर्क के साथ कि सबकी बीबी होती है दो अक्षरो वाली मेरी घरवाली चार अक्षरो वाली है। वे अक्सर महँगे होटलो मे पार्टियॉ देते। अच्छे अच्छे भाँति भाँति के परिधान पहनते और पाइप से धूम्रपान करते। जम्मू निवासी शर्मा जी सुदर्शन व्यक्तित्व के धनी थे। पूरी वेशभूषा से बड़े प्रोफेसर जान पडते जो वे ज्ञानत थे भी।

लेकिन जीवन का यह बुखार भी बहुत नही चला। कुछ उधार कुछ व्यवहार और कुछ ओवर ड्राफ्ट से खरीदे गये सामान और दुकानदारो के तकाजो ने उन्हे जल्दी ही इस विधा से भी उदासीन कर दिया। सयुक्त समाजशास्त्र समाजकार्य विभाग मे तब कोई प्रोफेसर नही था। दो रीडर उनसे सीनियर थे। प्रोफेसर पद खाली था। शर्मा जी ने तब तक डाक्ट्रेट नही की थी। अत अब वे थोड़ा उधर झुक गये और फिर उनकी दो तीन पुस्तके भी प्रकाशित हुई।

कक्षा मे पढ़ाने का शर्मा जी का उत्साह काफी क्षीण पड़ गया था फिर भी शोधार्थियो के लिए वे सुलभ सहज निर्देशक थे। शर्मा जी का व्यक्तित्व अत्यत सरल था। विधाता ने सरस्वती के वरदपुत्र की झोली को दुनियादारी कुटिलता छल-कपट के लेशमात्र का स्पर्श नही होने दिया था। महाकवि निराला के प्रति महादेवी जी द्वारा लिखे गये शब्द कि निराला जी तो भारी पारस के वे अनगढ़ शिला खड हैं जो जहाँ हैं वही उनका स्पर्श सुलभ है। यदि स्पर्श करने वाले मे मानवता के लौह कण विद्यमान हैं तो उनके सम्पर्क से वह स्वर्ण हो जायेगा। मुझे अपने जीवन मे केवल अन्य दो लोगों के प्रति सटीक बैठते लगे हैं– एक अपने पूज्य पिताजी के लिए और दूसरे प्रो शर्मा के प्रति। शर्मा जी भी ऐसे ही निस्पृह ऋषि थे। न किसी से लेना न देना। इस सबका भार श्रीमती शर्मा ने सम्हाल लिया था। शर्मा जी अत्यत स्पष्टभाषी थे। जिसके विषय मे जो महसूस करते उसे तत्काल अभिव्यक्त

करने मे कोई सकोच नही करते।

एक बार उन्होने एक सीन्यिर प्रोफेसर दम्पति को किसी होटल मे ले जाकर भोजन कराने के लिए अपने घर पर आमत्रित किया। वे दानो शर्मा जी के घर आये तो किसी कारणवश चलने मे कुछ देर हो रही थी। प्रोफेसर दम्पति का अहकार सर्व विख्यात था।

पत्नी ने कहा तो हम लोग अब चलते है। उनका अभिप्राय वापस घर जाने का था।

शर्मा जी ने बिना हतप्रभ हुए जडा अगर आप खाना खाकर आई हैं तब तो आप को जाना ही पडगा वैसे हम अभी १० मिनट मे चलते हैं।

शर्मा जी की इम्तहान की कापियो की परीक्षण शैली भी विचित्र थी। सुना है कि वे प्रश्न पत्र सामने रख लेते थे। पहले उसका प्रथम प्रश्न सभी कापियो मे जॉच डालते फिर एक एक करके दूसरा सवाल सब कापियो मे जॉचते फिर तीसरा और क्रमश अतिम प्रश्न देखते। तब कॉपियॉ भी कम होती होगी। लेकिन वे एक बार मे सब कापियो का एक एक प्रश्न देख कर ही उठते और इस प्रकार दस बार मे सब कापियॉ जॉच चुकते। आज प्रतिवर्ष सहस्रो की सख्या मे सब धान बाइस पसेरी के न्याय से कापियॉ निबटाने वाले अध्यापको के लिए यह परीकथा सा लगता है।

एक बार शर्मा जी से किसी ने सिफारिश की नम्बर बढ़ाने के लिये। शर्मा जी बोले अब तो मेरे पास इतना समय ही नही है। मै तो नम्बर चढाने जा रहा हूँ। उन सिफारिशी जी को आश्चर्य हुआ कि यह इतने अधिक समय का काम तो नही है। शर्मा जी का मानना था कि एक के नम्बर बढ़ाने पर उसी अनुपात मे दूसरे विद्यार्थियो को भी तो उतना ही लाभ देना पडेगा। यानी पूरा पैमाना ही बदलना पडेगा। शर्मा जी ने निजी स्तर पर मेरी समझ मे कभी भी शिक्षणाधीन मूल्यो से समझौता नही किया। यह बात दूसरी है कि उनकी सरलता और उदासीनता ने उनके परिजनो को इसके पर्याप्त अवसर दे दिये।

शर्माजी की सादगी और सरलता का बेजा लाभ लोगो ने खूब उठाया। समाजकार्य विभाग मे एक रीडर थे। समाजकार्य मे व्यावहारिक रूप से भी वे अपने ढग से माहिर थे दद फद मे निपुण भी। बाद मे अपनी इन्ही विशेषताओ के बल पर वे प्रोफेसर हो गये और विभागाध्यक्ष को धता बता कर विभागाध्यक्ष भी हो गये। अगली चयन समिति मे उन्होने ट्रासपोर्ट विभाग के अपने ही समुदाय के एक बाबू को विभाग मे प्रवक्ता नियुक्त कर दिया। यह हजरत मुकदमेबाजी मे काफी महारत रखते थे। नये विभागाध्यक्ष को पूर्व विभागाध्यक्ष से अभी भी कुछ खतरा नजर आ रहा था। अत उनके खिलाफ एकाध मुकदमा करवाना भी जरूरी था। इसके लिए उन्होने शर्मा जी को मोहरा बनाया। सरल हृदय शर्मा जी उनके जाल मे फँस गये हालाँकि इसका कोई लाभ उन्हे नही मिला। एक दिन मुकदमे की तारीख लगी हुई थी। मामला लोवर कोर्ट मे ही था। आगे आगे शर्मा जी पीछे पीछे मुकदमा माहिर

पैरोकार। इजलास में जज ने शर्मा जी से गीता पर हाथ रखकर जो कुछ कहेंगे सच कहने की शपथ दिलानी चाही।

शर्मा जी शान्त भाव से बोले मैं चल करके यह शपथ कैसे लूँ मुझे क्या पता ? यह तो पीछे वाला कहे कि सब सच कह रहा है।

पूरी अदालत मे ठहाका गूँज उठा। पता नही उसकी परिणति क्या हुइ।

शर्मा जी के एक प्रिय शिष्य थे। सम्भवत किसी छात्र की पी एच०डी० के वे परीक्षक थे। छात्र ने शर्मा जी से कहा कि वे उनसे कह दे कि वह वाइवा के लिए थोडी शीघ्र की तारीख नियत कर दे। शर्मा जी ने साफ कह दिया देख ! उससे कहने का कोई फायदा नही वह तभी आयेगा जब उसके पालिटिक्स को सूट करेगा। अपने इन मेधावी छात्र की अत्यधिक राजनीतिक सलग्नता से शर्मा जी अक्सर क्षुब्ध रहते थे और समय समय पर बिना सामने वाले की चिन्ता किये दु ख रोष व्यक्त भी करते रहते।

शर्मा जी की अव्यावहारिकता उनकी सबस बडी शत्रु साबित हुइ। उनकी पारिवारिक परिस्थितियाँ कभी उन्हे रास न आई। सामाजिक परिवेश से भी वे अनुकूलन न कर सके। जब तक अधीन रहे तब तक ऊपर वालो न उनके माध्यम से अपना उल्लू सीधा किया। जब अध्यक्ष हुए तो अधीनस्थो के उत्पात भाजन रहे। एक दो वक्र बुद्धि के वे अत तक शिकार रहे।

उनकी सेवानिवृत्ति के अवसर पर विभाग मे एक औपचारिक चाय का आयोजन हुआ। शर्मा जी ने वहाँ भी अपनी स्पष्ट बात ही कही।

बिना तैरना जाने पानी मे कूद पडने से जो स्थिति होती है वही स्थिति मेरी भी इस विभाग मे हुई। अमुक ने जो कहा वह मैने कर दिया। दूसरे ने जो कहा वह मैने कर दिया (उन्होने स्पष्ट दो नाम लिये थे और दोनो सज्जन वही विराजमान थे जिनके कारण उन्हे बडे बडे कष्ट उठाने पडे थे) और मुझे चल करके क्या मिला बस ऐसे ही ! सचमुच हम सभी मानवता के लौह कणो से विरत ही थे और शर्मा जी जैसे सहज नितात मानव का सभी ने शोषण किया उनके परिजनो ने भी पराये जनो ने भी सभी ने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए

☆

प्रोफेसर सुशील चन्द्रा

श्री सुशील चन्द्र तथा हम लोगो के परिवार एक ही वर्ष मे विश्वविद्यालय परिसर मे रहने आये थे। उस वर्ष मे परिसर मे दो डिजायनो मे आठ नये मकान अध्यापको के लिए निर्मित हुए थे। हमारा और चन्द्रा साहब के मकानो का आकार प्रकार बिल्कुल एक जैसा था। उस समय हम दो हमारे दो जैसा कुछ नही था। चार पाँच छ बच्चे अभिजात वर्ग मे भी सामान्य माने जाते थे इससे कम की सख्या मे केवल का विशेषण लगा दिया जाता था। फिर भी चन्द्रा साहब का तीन पुत्र और पाँच पुत्रियो वाला परिवार कुछ बडा ही माना जाता था। बाद मे वहाँ बहनो की सख्या छ हो गई थी। बडी पुत्री लगभग मेरे समवयस्क थी और सबसे छोटा पुत्र मेरी छोटी बहन के बराबर। हम तीन भाई तीन बहनो मे प्रत्येक के बराबर का कोई न कोई हमजोली उस परिवार मे था। हम दो बहने बडी थी वे तीन बहने बडी थी। हमारे तीसरे भाई के बराबर उनका बीच वाला भाई था। वे दोनो अब भी मित्र हैं। इस प्रकार हम लोगो का चन्द्रा साहब के यहाँ खूब आवागमन होता रहता था।

श्रीमती चन्द्रा यानी हम लोगो की आटी बडी मृदु स्वभाव वाली महिला थी। परिवार और परिवार से बाहर भी सभी के प्रति उनका सरक्षक का सा भाव रहता था। स्वय के इतने बडे परिवार के बावजूद सयुक्त परिवार का पारम्परिक निर्वाह भी आटी के व्यक्तित्व की विशेषता थी। चन्द्रा साहब की चार बहने थी। सभी उनसे छोटी और दो छोटे भाई थे इनमे से कइयो के विवाह आदि भी चन्द्रा साहब के माता पिता के जीवित होते हुए भी चन्द्रा दम्पत्ति ने ही सम्पन्न किये थे। बुआ चाचा चाची सबके प्रति आटी का अभिभावकीय व्यवहार था। वे भी सभी की उतनी ही सम्मान्य थी। आटी का हँसता हुआ चेहरा बडा मोहक लगता था। वे यद्यपि स्थूलकाय महिला थी किन्तु चलने काम करने मे कतई निरालस थी। नौकरो के होते हुए भी रसोई मे जाना उनका नियम था। वे स्वय निरामिष थी किन्तु सामिष और निरामिष दोनो प्रकार के पाकशास्त्र मे वे निपुण थी। कढ़ाई बुनाई आदि मे भी दक्ष थीं बातचीत मे बेबाक और व्यवहार मे आत्मीय। आटी के पास जाने मे किसी को कोई सकोच नही था। उनके द्वार सभी के लिए खुले रहते थे। अड़ोस पडोस मे भी किसी को कोई सहायता परिचर्या की आवश्यकता पड़ी हो और आटी वहाँ न पहुँची हो ऐसा हमे याद नही है।

हमारा चन्द्रा साहब से अकल रूप मे परिचय आटी के माध्यम मे हुआ था। वे

हमारे मित्रो के डैडी थे। अकल भी बडे मृदुभाषी थे बच्चो के प्रति अत्यन्त सहृदय और विनोदी भी। उनका अपना कमरा बडी तरतीब से व्यवस्थित था। प्राय वे उसमे तख्त पर बैठे रहते थे। हम बच्चे लोग आमतौर से अदर बरामदे मे जमा होते थे। वहाँ से अकल का कमरा दूर था। उनके प्रति बच्चो द्वारा थोडी दूरी बरती जाती थी यद्यपि वे अपनी ओर से हम लोगो के साथ वार्तालाप मे कभी कभी सहभागिता कर लेते थे।

अकल के माता पिता मामा पापा से सबोधित किये जाते थे। ये दोनो लोग बचपन मे पढ़े फिलिमन और बासेज जैसे चरित्र थे दोनो एक दूसरे के बिना अपूर्ण। स्थायी रूप से वे दोनो लखनऊ मे नही रहते थे। अपने दूसरे बच्चो के पास भी रहते थे परन्तु जब यहाँ आते तो कई कई महीने रहते थे। यह बुजुर्ग एक दूसरे के साथ साये की तरह जुडे रहते लान मे बरामदे मे डायनिग टेबल पर ड्राइग रूम मे या अपने कमरे मे दोनो साथ साथ ही रहते थे। एक बार किसी विज्ञापन मे पहले पहल मेड फार ईच अदर पढ़ कर किसी ने कहा था जैसे मामा पापा यह उनका सार्वजनिक सम्बोधन भी था। मामा पापा का अकल आटी सहित सभी लोग बडा अदब करते थे। ऐसा लगता था कि वे दम्पति घर के किसी काम मे दखल नही देते हैं फिर भी परिवार के हर काम मे उनकी उपस्थिति का व्यक्त अव्यक्त बोध अवश्य दृष्टिगत होता था। हम लोग भी यदि वे यहाँ हो तो उनसे नमस्ते करना कभी नही भूलते थे।

इस प्रकार हम बच्चे लोगो का साथ साथ स्कूल जाना तैराकी के लिए साथ साथ जाना तैराकी प्रतियोगिताओ की एक साथ तैयारी कभी कभी एकाध पिकनिक आदि का कार्यक्रम और फिर साथ साथ बैठकर बतियाना हमारी मित्रता के परिचायक बन गये थे। दोनो परिवार के बच्चो की मित्रता के कई सेट बन गये थे और हमारी परस्पर अन्तर्क्रिया खूब होती थी। हमारे परिवार की अपेक्षा चन्द्रा साहब का परिवार अधिक आधुनिक था कुछ अशो मे पाश्चात्यीकृत भी। हम लोग अम्मा पिताजी के बच्चे थे मम्मी पापा का सबोधन हम सभी के द्वारा हमारे ताई जी ताऊ जी के लिए पहले ही आरक्षित हो चुका था। मम्मी पापा के आगे माता पिता के लिये किसी सबोधन मे हमारी कोई गति नही थी। चन्द्रा साहब डैडी थे। अक्सर मेरे तीन वर्ष के भाइ के समक्ष उनके बच्चे डैडी के प्रकरण सुनाया करते थे और डैडी की वीटो पावर के भी। एक एक प्रसग मे डैडी ने कहा डैडी ने मना किया डैडी ने डाँट दिया डैडी गुस्सा होगे डैडी आ गये होगे जैसे डैडी सबोधन से हमारा भाई बडा आतकित था। एक बार वह अपने मित्र के साथ उसके घर गया और उसका डैडी से साक्षात हो गया। लौट कर उसने माँ से रहस्योदघाटन किया अम्मा ! हम जान गये वे डैडी वैडी कुछ नही वो तो उनके पिताजी है।

अकल आटी दोनो पान के बडे शौकीन थे। आटी का पानदान भी शाही था। एक फीट के घेरेवाला एक बालिश्त ऊँचा पानदान जिसका ऊपरी ढकना मदिर के गुम्बज जैसा था। इसके अदर झाँकने का मौका हमे कभी नही लगा। आटी का काफी सत्सग इस पानदान के साथ होता था। वे बडे मनोयोग से पान लगाती थी अकल का गिलौरीदान भी वे

अपने हाथ से ही सजाती थी। आने जाने वालो का सत्कार और स्वय हँसते हुए चेहरे मे सुरक्षित दन्तपक्ति पान के रस से सनी उनकी वाणी शायद कुछ ज्यादा मधुर हो जाती थी।

इसी प्रकार से मित्र भाव और पडोसी धर्म का निर्वाह करते हम लोग बडे हो रहे थे। हम लोगो ने कई वर्ष गुजार दिये। हाँ इस पूरे प्रसग में एक बात महत्त्वपूर्ण है जो आज की चिडिया नेत्रमुखी सस्कृति मे विलुप्त हो गई है। हम लोग जब विश्वविद्यालय परिसर में आये हमारे पूज्य पिताजी विश्वविद्यालयी राजनीति के ग्रहण से ग्रस्त थे। वस्तुत इसी राजनीतिक चाल के तहत उन्हे इसी बँगले मे आना पडा था अन्यथा वे किसी बेहतर बॅगले के हकदार थे। खैर उस कथा का न यहाँ अवकाश है और न आवश्यकता। मेरे पिताजी उस समय विश्वविद्यालय के तत्कालीन कर्णधार श्री चन्द्रभानु गुप्त की आँख की किरकिरी थे जो कि येन केन प्रकारेण उन्हे पराजित करने का असफल प्रयास कर रहे थे। अत गुप्त जी के कृपापात्र जो आचार्यगण थे वे पिताजी से प्रत्यक्ष सबध रखने म कतराते थे। तब पुरुषो क इन पारस्परिक सबधो का उनकी पत्नियो या बच्चो पर लेशमात्र भी प्रभाव नही देखा जाता था। सभी कैम्पस के वासी थे अच्छे पडोसी और अच्छे मित्र घनिष्ठता या दूरी अपने अपने व्यक्तिगत मन मिलने या न मिलने के आधार पर होती थी। आज के जीवन मे यह अविश्वसनीय लगता है क्योकि अब यदि दो पुरुषो मे तेज बात भी हो जाती है तो पतियो के घर पहुँचने से पहले ही उनकी पत्नियो को उसकी भनक लग जाती है जिसका निर्वाह करना बच्चो सहित धर्मपत्नीत्व की पहली पहचान होती है।

अकल और आटी दोनो बडे उदार प्रकृति के अमितव्ययी प्राणी थे फिर भी बड़े परिवार और उससे भी बढ़कर कुनबापरस्ती के बोझ से दबे तो रहते ही थे। प्रकृति से भी वे न तो झगडालू थे न बहुत दबग। वे अपने से वरिष्ठ जन का जितना सम्मान करते थे उतना ही उनसे सहमे भी रहते थे गुरु अधिकारी सभी से। चिकित्सा से अधिक बचाव मे उनकी आस्था थी। उनका सदैव यही प्रयास रहता कि कोई अप्रिय प्रसग उत्पन्न ही न हो किसी जटिल परिस्थिति का अवसर ही न आने दिया जाये। उस समय परिसर मे रहने वालो की तमाम स्वस्थ परम्पराओ के साथ यह भी चलन था कि जो भी अध्यापक कैम्पस आवास मे आते थे वे सपत्नीक पुराने रहने वालो के यहाँ (जिनसे वह सबध रखने के इच्छुक हो) जाते थे और फिर वे लोग भी सपत्नीक तथाकथित विजिट रिटन करते थे। अम्मा पिताजी ने भी इस प्रथा का यथा सामर्थ्य निवाह किया और दूसरे ही दिन आटी आ गई। वे कुछ माह पूर्व कैम्पस मे आ चुकी थी। हम लोगो को क्या चाहिये जो आवश्यकता हो उन्हे बता दे उनके यहॉ से नि सकोच मॅगा ले आदि आदि। दो चार दिन बाद पिताजी से अकल की भेट हुई।

बोले अवस्थी जी! हम भी आपके यहाँ आयेगे पर जोडे से नही आयेगे लोगो की नजर बडी नेज है। वे एक दिन ८ बजे शाम हमारे यहाँ पहले पहल आये थे।

कुछ वर्षो बाद मैंने विश्वविद्यालय मे बी०ए० मे प्रवेश लिया और द्वितीय वर्ष से

समाजशास्त्र विषय ले लिया। उसके बाद विधि का विधान एम०ए० समाजशास्त्र मे करने का निर्णय ले लिया गया। अब अकल यानी चन्द्रा साहब को मैंने एक नये रूप मे देखा। वे समाजशास्त्र एव समाजकार्य के सयुक्त विभाग के अध्यक्ष थे। उनकी विशेषज्ञता समाजकार्य मे थी हमे वे रिसर्च मेथोडालाजी तथा सामाजिक विघटन पढ़ाते थे। समाजशास्त्र विभाग भी उस समय बडा सम्पन्न था। श्री सेवाराम शर्मा श्री अवध किशोर शरण श्री शीतला प्रसाद नगेन्द्र तथा श्री टी०के० मजूमदार जैसे धुरधर अध्यापक यहाँ मात्र प्रवक्ता थे। उनके भाषण और स्टाफरूम मे उनकी शैक्षणिक बहसे विभाग की शैक्षिक सम्पन्नता की द्योतक थीं

चन्द्रा साहब विभाग के सहयोगियो मे सुशील साहब की सज्ञा से सबोधित किये जाते थे। ऊपर के दो मुख्य कक्षो मे से एक डायरेक्टर जे०के० इन्स्टीट्यूट का था और तत्कालीन निदेशक डॉ० राधाकमल मुकर्जी उसमे कभी-कभी आया करते थे। दूसरा कमरा अध्यक्ष सुशील साहब का था। साफ सुथरा शान्त कक्ष जिसमे वे अक्सर अकेले बैठ कर काम करते रहते। अब यह कक्ष समाजशास्त्र विभाग का सेमीनार कक्ष है। उनके कक्ष मे कभी भी बिना अनुमति लिये या दो चार की सख्या मे एक साथ प्रवेश करने की हिम्मत किसी छात्र छात्रा की नही होती थी। सभी सहयोगी भी सुशील साहब का बहुत सम्मान करते थे। चन्द्रा साहब की शराफत सभी के ऊपर हावी थी और सभी उनक प्रति विनीत थे।

मुझे चन्द्रा साहब का अकल रूप ही अच्छा लगता था। विश्वविद्यालय मे मेरा उनसे कोइ सीधा सरोकार भी न था। एम०ए० द्वितीय वष मे मैंने अतिम प्रश्नपत्र के स्थान पर थीसिस ली थी श्री नगेन्द्र के साथ। उसकी अनुमति के लिए पहली बार उनके अध्यक्ष कक्ष मे गई थी "अच्छा अच्छा तो थीसिस लागी ? गुड। कितने परसेन्ट मार्क्स है ? कहते हुए उन्होने हस्ताक्षर कर दिये। हमने कागज आफिस मे जमा कर दिया। दुबारा उनके कमरे मे जाने की आवश्यकना साल भर बाद पडी जब पी एच०डी० मे प्रवेश की औपचारिता पूरी करनी थी। पी एच०डी० मे भी श्री नगेन्द्र जी के साथ ही प्रवेश लिया था।

एम०ए० मे प्रवेश के बाद मुझे चन्द्रा साहब के घर जाने मे कुछ सकोच होने लगा। उनकी बेटियो से दोस्ती भी लगा कुछ शिथिल पड गई थी आवागमन भी कम हो गया था। एक बार आटी ने अखड रामायण आयोजित की थी। कैम्पस मे अखड रामायण सबसे ज्यादा चन्द्रा साहब क यहॉ ही होती थी। खूब ढेर लोग वहाँ होते थे। उस बार भी रामायण मे हम लोग गये।

आटी ने पूछा कितने दिन बाद आई हो ? अब मैं अकल से कहने वाली हूँ कि तुम्हारा एडमिशन कैसल कर दे वरना तुम आओगी ही नही। आटी के स्वर मे आत्मीयता और वात्सल्य था उनकी उसी मधुर मुस्कान के साथ।

पी एच०डी० मे प्रवेश मैंने किसी अशुभ महूर्त मे लिया था- दो वर्ष तक मेरा कोई काम न हो सका। मेरे निर्देशक जी पूज्य पिताजी से कुछ असतुष्ट हो गये थे। अत मेरा

उनके कोप का भाजन बनना' बहुत अस्वाभाविक नही था। उधर वे विभागीय व्यवस्था मे अपनी भावी स्थिति बहुत सुदृढ़ नही पा रहे थे। अत अपने मूल निवास मे बने नवनिर्मित विश्वविद्यालय मे जाने का उपक्रम कर रहे थे। गुरुजी का अभीष्ट सिद्ध हुआ। वे मेरे एम०ए० करने के दो वर्ष बाद गोरखपुर मे रीडर होकर चले गये। जाते जाते मुझे मृग मरीचिका आश्वासन दे गये कि वे लखनऊ आते रहेगे और मैं उनके ही अडर रहूँगी। मेरा काम वे ही करवायेगे जैसा कि कभी नही हुआ। पिताजी का गुरुजी के प्रति अत्यत आत्मीय और सकारात्मक भाव था। जब भी मैं अपनी पी एच०डी० कार्य की प्रगति से असतुष्ट होकर गाइड बदलने की बात करती पिताजी मुझे झिडक देते फिर गुरुजी के प्रति अधिक आस्थावान होने का उपदेश देते। मैं एक स्थानीय डिग्री कालेज मे समाजशास्त्र की अध्यक्षा भी हो गई थी पर पी एच०डी० धरी की धरी रह गई। गुरुजी दो वर्ष की छुट्टी पर थे उसके पूरा होते और स्वय वहाँ कन्फर्म होते ही उन्होने यहाँ की सेवाओ से मुक्ति ले ली और साथ ही मेरे पी एच०डी० के निर्देशकत्व से भी जिसकी मौखिक रूप से अनौपचारिक सूचना उन्होने हमे किन्ही विश्वासपात्र से भिजवा दी थी। मेरे जीवन के चार वर्ष निकल गये थे। खैर तब यह निर्णय हुआ कि चन्द्रा साहब के साथ पी एच०डी० पूर्ण की जाये।

मैं चन्द्रा साहब से घर पर मिली। पहले आटी से अपना मकसद बताया। उन्ही की उपस्थिति मे अकल से रोना रोया। अकल ने मेरी बात पूरी होती इससे पहले ही मेरी व्यथा से मुझे उबार लिया।

'तो इसमे क्या दिक्कत है। यू आर टापर आफ यौर बैच उन्होने दाहिने हाथ से अपना सीना थपथपाते हुए कहा मैं तुम्हे पी एच०डी० कराऊँगा बस दो साल मे तुम हो जाओगी डॉ० आभा अवस्थी ओ०के० जाओ।

विषय निर्धारण के लिए मुझे उन्होने अगले दिन बुलाया। मैं अपने स्तर पर किये यत्किचित काम का पोथी पत्रा सम्हाले अगले दिन नियत समय पर पहुँची। उन्होने घर पर ही बुलाया था।मैने अपना पुराना विषय उन्हे बताया और जो कुछ भी जोड़ा बटोरा था वह भी दिखाया। मेरा विषय हिन्दू विवाह के बदलते प्रतिमान मूलत सस्कृत साहित्य पर आधारित था दूसरा भाग दत्त सकलन और आधुनिक परिवर्तन से सबद्ध। चन्द्रा साहब मूलत उर्दू के ज्ञाता थे। सस्कृत कौन कहे हिन्दी मे भी वे बहुत पारगत नही थे। मैने धीरे से यह प्रस्ताव रखा कि यदि वे चाहे तो मेरे विषय को आमूल परिवर्तित कर दे। मै नया विषय ले लूँगी। चन्द्रा साहब ने मेरे रजिस्टर कागज उल्टे पुल्टे।

'नही-नही ! तुम्हारी इतनी मेहनत को मैं बर्बाद नही होने दूँगा। तुम काम करो निर्देशन मेरा रहेगा। इसी विषय को थोडा बदल कर सिनाप्सिस बनवा लेते है और उसे अप्रूव करवा लेगे।

मैंने नई सिनाप्सिस बनाई चन्द्रा साहब ने सशोधन किये जमा कराई और वह

अनुमोदित भी हो गई। मेरा काम चन्द्रा साहब के प्रात्साहन से चल नकला। मेरे मूल आलेख मे उन्हे कुछ कठिनाई अवश्य होती थी किन्तु उनका बडप्पन था कि उन्होने न तो कभी उसके प्रति कोई दुराग्रह किया और न ही उसे बदलने के लिए कहा। उसके लिये उन्होने मुझे पूरी स्वतत्रता दे दी थी। थीसिस के दूसरे हिस्स मे वे यथा साध्य अपने सुझाव दे देते थे।

अकल केवल एक बार मुझसे कुछ रुष्ट दिखे। मै काफी दिनो तक उनसे नही मिली थी। इस बीच मुझे ऐसा लग रहा था कि मै कुछ ठोस काम करके ही जाऊँ। वे एक दिन मुझे रास्ते मे मिले और घर आने का आदेश दिया। मै कुछ पारिवारिक कठिनाइयो और अपनी अस्वस्थता के कारण यथेष्ट काम नही कर सकी थी। चन्द्रा साहब के निर्देशानुसार उनके घर पहुँची। वे अदर बरामदे मे फ़ाग चेयर पर बैठे थे। मुझे भी वही बिठाला तुम्हारे काम का क्या हो रहा है ? देखो यह फिटस और स्टार्टस मे काम नही होने वाला है। यू शुड बी सीरियस। वे एक सॉस मे सब कह गये थे और मैं भी एक ही साँस रोके सुन रही थी। उनका यह रूप मेरे लिए बिल्कुल अनजाना अनचीन्हा था। कुछ भी कहने का साहस न हुआ। बहुत चाहा मगर अपनी कठिनाई बताने के लिए मुँह ही नही खुला जबान जैसे तालू से चिपक गई थी। हाथ मे पेन और फाइल थी। पता नही किस अन्तर्द्वन्द्व मे फाइल की दफ्ती के कवर पर fits & starts लिख कर उन्ही अक्षरो पर पेन घुमा घुमा कर दफ्ती मे छेद कर डाले मानो स्टैन्सिल काटा हो। वे धीरे धीरे मुझे कुछ और समझा रहे थे। विश्वविद्यालय मे चयन समिति कभी भी हो सकती है। मुझे कैरियर का ख्याल रखना चाहिये आदि। मैं मूक बैठी रही थी।

उस दिन की इकलौती डॉट का बडा सार्थक प्रभाव हुआ था। मैंने दिन रात एक करके शोध प्रबध पूरा किया था। पूरा छपा हुआ ग्रन्थ उन्हे दिखाया जमा करने से पूर्व उनके हस्ताक्षर लेने के लिये। अकल अति प्रसन्न थे। आटी से मिठाई खिलाने को कहा और मेरी थीसिस जमा हो गई। मेरे दुर्भाग्य से तब तक चन्द्रा साहब अध्यक्ष नही रह गये थे। वे एक बडी गभीर दुरभिसधि के शिकार हुए थे। अपनी शराफत के ही मारे हुए थे। उनकी पीठ मे छुरा भोका गया था। चन्द्रा साहब आहत थे किन्तु शान्त। उनके अध्यक्ष न रहने के कारण मेरी थीसिस मे भी नवनियुक्त अध्यक्ष जी ने कई अडगे लगाये थे पर अकल के आशीर्वाद के सहारे मुझे बेदाग डिग्री मिली थी।

चन्द्रा साहब जिन कुटिलताओ के तहत अध्यक्ष पद से च्युत हुए थे उन्ही की भावी परिणति मे उनके भविष्य के रास्ते मे भी कॉटे रूँधे जा रहे थे। हताश अकल ने लखनऊ छोडने का मन बना लिया था और इन्स्टीट्यूट आफ सोशल साइन्सेज के डायरेक्टर होकर आगरा चले गये। वहाँ से सेवानिवृत्त होकर दिल्ली मे अपने पुत्र के साथ अत तक रहे। उनके दिल्ली प्रवास मे मेरा वहॉ जाने पर उनके दर्शन का कार्यक्रम बन जाता था। आटी और

अकल क चेहरे म कोई परिवर्तन नही था। आकृति मे इतना प्रत्यक्ष अतर जरूर था कि अकल न अब दाढी बढा ली थी। मुझे उनकी दाढी टालस्टाय जैसी लगती थी। वे भी इसे सुनकर खूब हसत थ। अब मै विश्वविद्यालय मे ही पढा रही थी। एक बार मुझसे बोले

तू मुझे नाना कब बना रहा है ? मेरे चहरे का आश्चर्य पढकर बोले ऐकेडेमिक नाना तेरे किसी विद्यार्थी की थीसिस जमा हुई कि नही मुझे इक्जामिनर बनाकर मुझे नाना नही बनाया क्या ? ऐसी थीसिस दखने का दूसरा मजा है।

सयोग स उस समय मेरे निर्देशन म जो थीसिस जमा हुई थी उसके एक परीक्षक वे ही थे वे ही वाइवा लेने आये थे। बाद मे घर मे भोजन करने आये तो मुझे बहुत देर से आशीर्वाद देकर गये थ। मुझे लगता है कि वे सभी फलीभूत हुए।

उसके बाद मेरी एक दूसरी छात्रा की थीसिस भी उनके पास गइ थी किन्तु उसका परीक्षण चन्द्रा साहब द्वारा हो ऐसा मेरा भाग्य नही था। १९८६ मे मै एक प्रतिनिधि मडल मे रूस कोरिया चीन जा रही थी, जाने से पहले उनसे मिलने गइ। दोनो लोग यथावत बडी गर्मजोशी स मिले। अकल ने प्रसन्न मुद्रा मे कहा हॉ अब मै फिर से नाना बनने वाला हूँ थीसिस आ गई है। अभी बडी गर्मी है बस जरा मौसम ठीक हो जाये तो रिपार्ट भेज दूँगा। वाइवा मे आना हो तो एक सावन हो जाए उसके बाद ही बुलाना। गर्मी मे सफर बडा मुश्किल है। वही अकल से मेरी अन्तिम भेट थी विदेश से लौटत समय दिल्ली रुकना नही हुआ और फिर एकाएक उनके निधन का समाचार मिला। एक अल्पकालिक बीमारी उन्हे ले गई थी।

अकल के बाद भी मै आटी से मिलने का लोभ सवरण नही कर पाती थी और जब भी दिल्ली जाती उनसे जरूर मिलती थी। आटी शरीर से शिथिल होती जा रही थी लेकिन उनकी सभी परिस्थितियो मे अपने को समायोजित करने की अदभुत क्षमता और हर एक के साथ यथासम्भव हिल मिल जाने की विचित्र सामर्थ्य उनका सशक्त सबल थी। उन्हे आमतौर से कभी किसी स कोई शिकायत नही होती थी। मैंने उन्हे प्राय प्रसन्नचित्त ही देखा था। सभी को खुश रखना भी उनके स्वभाव का अग था। उत्तरदायित्व की भावना उनमे कूट कूट कर भरी हुई थी। पुत्र के साथ रहते हुए भी गृह सचालन का पूरा भार वे ही सम्हाल रही थी। उन्होने मामा पापा को जो मान दिया था अपने पुत्रो से वह उनका सहज प्राप्य था ऐसा मैने हमेशा महसूस किया था।

फिर एक बार लखनऊ मे हो पता चला कि आटी भी दिवगत हो गई। उनक निधन की सूचना मुझे बहुत बाद मे प्रसगवश मिली थी। समय से मिलती तो भी मैं क्या करती। शायद इसीलिए बच्चो ने सूचित नही किया होगा।

☆
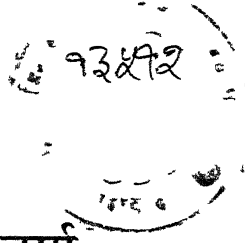
प्रोफेसर एस०सी० वर्मा

प्रोफेसर एस०सी० वर्मा विश्वविद्यालय के उन अध्यापकों में से एक थे जिन्होंने अध्यापन के अतिरिक्त न कभी किसी प्रशासनिक पद पर ही कार्य किया और न ही ब्यूरी गेट चौकीदारी जैसे अध्यापकों के लिए नवोदित अथवा दायित्वों का ही सम्भाला लेकिन फिर भी हमेशा चर्चा का विषय बने रहे अध्यापकों और छात्रों दोनों के। जब मैंने बी०ए० मे प्रवेश लिया था तब वे अस्थायी प्रवक्ता थे। बाल अपराध और सामाजिक विघटन मे तब उनकी विशेषज्ञता थी। एक दशक से भी अधिक के अन्तराल के बाद जब मैं प्रवक्ता नियुक्त हुई तो वे तभी रीडर हुए थे और विभाग मे उनकी पहचान मार्क्सवादी विद्वान के रूप मे हो चुकी थी।

इस बीच उन्होने एक लम्बी शैक्षिक यात्रा तय की थी। उनके हाव भाव एव बाह्य व्यक्तित्व मे काफी अतर आ गया था। समाजशास्त्रीय सैद्धान्तिक विवेचन और अध्यापन मे वे विभाग मे सर्वश्रेष्ठ माने जाते थे। भाषा पर उनका अधिकार अभिव्यक्ति की सशक्तता तथा विषय प्रवर्तन मे निपुणता और उस सबके साथ उनकी भाव भगिमाओ का ताल मेल किसी भी सगोष्ठी या वाद विवाद मे उनका एक विशेष प्रभाव छोड देता था। प्रोफेसर वर्मा की वाकपटुता तथा सवाद मे प्रत्युत्पन्नमतित्व भी उनके बुद्धि विलास मे परिलक्षित होते थे।

मै विद्यार्थी जीवन मे वर्मा जी के सम्पर्क मे बहुत कम रही या यो कहे कि नही ही रही। बी०ए० मे छात्र छात्राओ का यो भी अपने विषय के अध्यापको से विशेष परिचय नही हो पाता है। समाजशास्त्र मेरा गौण विषय था केवल एक वर्ष पढा था तब ऐसी ही व्यवस्था थी विश्वविद्यालय मे। इसके बाद एम०ए० मे लघुशोध के माध्यम से निर्देशक अध्यापक के साथ विद्यार्थी के सबध सपर्क विशेष हो जाते हैं। मेरा लघु शोध श्री एम०पी० नागेन्द्र के साथ था। इसे मेरे साथ एक अन्य भला तत्त्व जुडा था। मेरे पूज्य पिताजी लखनऊ विश्वविद्यालय मे ही हिन्दी विभाग मे प्राध्यापक थे और विश्वविद्यालय के एक अति प्रतिष्ठित वरिष्ठ और दबग अध्यापक माने जाते थे। उनके सहयोगियो मित्रो का स्नेह मेरा प्राप्य था और इनमे अधिकाशत वरिष्ठ अध्यापको का सरक्षण भी मुझे प्राप्त था। अत यदि कभी किसी पुस्तक आदि की आवश्यकता होती तो वह मुझे इन वरिष्ठ अध्यापकों से सुलभ हो जाती थी। डॉ० वर्मा सम्मान और सकोचवश पूज्य पिताजी से बहुत स्वतत्रता नही ले पाते थे और जैसा कि बाद मे कभी कभी वे बताते थे उनसे आतकित भी रहते थे।

एम०ए० करने के बाद शोध छात्रा के रूप मे मेरा कभी कभी विभाग मे जाना होता था। तब डॉ० वर्मा से भी औपचारिक भेट हो जाती थी। वर्मा जी के व्यक्तित्व की एक और विशेषता थी जिसका उन्होने आजीवन निर्वाह किया। वे बड मूडी थे। इसी कारण उनका व्यवहार अक्सर बडा असभाव्य हो जाता था। अमुक के अभिवादन का उत्तर वे कितनी गर्मजोशी या ठडेपन से देगे यह सामने वाले की शख्सियत पर कम उनके अपने मूड पर ज्यादा निर्भर करता था। वे स्वय भी किसी को कैसे विश करते हैं यह भी उनका अपना निर्णय होता था बशर्ते किसी औपचारिक सबध का निर्वाह करना उनकी विवशता न हो। अत जब भी मेरी विभाग मे या विश्वविद्यालय मे चलते फिरते उनसे मुलाकात होती तो यह निर्णय उनका ही होता था कि वे मुझे किस सीमा तक और किस स्तर की तवज्जो देगे। कुछ वर्षो मे मेरी पी एच० डी० पूरी हो गई थी। मैंने एक स्थानीय डिग्री कालेज मे अध्यापन पहले ही प्रारम्भ कर दिया था। कालान्तर मे अध्ययन मडल और कोर्ट की सदस्य के रूप मे विश्वविद्यालय की बैठको मे मेरी सहभागिता भी होने लगी। डॉ० वर्मा से इन्ही अध्ययन मडल की बैठको मे मुझे कुछ अधिक वार्तालाप का अवसर मिला। तब उनके वार्तालाप का मुख्य विषय मेरी छात्राओ का शैक्षिक स्तर उनके द्वारा पढ़ी जाने वाली प्रचलित पुस्तको और समकालीन घटिया समाजशास्त्रीय लेखन विषयक चिन्ता और समाजशास्त्रीय अध्ययन अध्यापन की भावी कठिनाइयो मे निहित रहता था। प्राय अध्ययन मडल के बाह्य सदस्य प्रोफेसर नागेन्द्र जो कि गोरखपुर विश्वविद्यालय मे अध्यक्ष होकर चले गये थे होते थे। उपरोक्त वार्तालाप मे प्रोफेसर नागेन्द्र की भी समान रुचि रहती थी। डॉ० वर्मा की शैक्षिक गति की गहनता का परिचय मुझे इसी दौरान मिला था। लेकिन अब तक भी मैं वर्मा जी से बात करने मे कभी भी सहयोगी का भाव नही जुटा पाई। वे यदा कदा अकारण सकारण पिताजी से मिलने हमारे घर भी आ जाते थे। वे जितनी मर्यादा का निर्वाह पूज्य पिताजी के साथ करने थे उससे कही अधिक मै उनके साथ निभाती थी। वस्तुत मैं दोनो बातो के प्रति सचेत थी। एक तो पिताजी उनक मानक वरिष्ठ सहयोगी हैं ही मेरा उनका तो शिक्षक शिक्षार्थी का सबध है। दूसरे डॉ० वर्मा के मूड की अनिश्चितता। इसका परिणाम भी बडा सुखद रहा। मुझे विश्वविद्यालय मे प्रवक्ता होने से पूर्व कभी डॉ० वर्मा का कोपभाजन नही बनना पडा जबकि उनके किसी प्रिय से प्रिय छात्र का यह सहज प्राप्य हो सकता था। उनके द्वारा कक्षा न छात्राओ को भी गेट आउट किये जाते मैने स्वय देखा था भले ही उस जमाने की ठेठ छात्रा थैक्यू सर कहकर ही बाहर गई हो।। उनके अपने घनिष्ठ से घनिष्ठ मित्र भी उनक इस कोप सान्निध्य से वचित नही रहे होगे यह निश्चित है।

समाजशास्त्र विभाग मे डॉ० वर्मा की कनिष्ठ सहयोगी होने पर डॉ० वर्मा के मूड के कई रूप मुझे देखने पडे या सहने भी पडे। अपने जूनियर्स एव विद्यार्थियो से न सुनने की आदत नही थी वर्मा जी को और मैं बिना सोचे समझे हॉ न कहने की अपनी आदत से मजबूर थी और अब भी हूँ। अत कई बार मुझे अपनी इस मजबूरी की सजा भुगतनी पडी।

इन सारे प्रकरणो मे डॉ० वर्मा की नाराजगी की अभिव्यक्ति बडी विलक्षण होती थी।

विभाग म मेरी नियुक्ति पर वे बडे प्रसन्न हुए थे। मुझे बहुत आशीर्वाद बधाई दी। अपने हाथ से मेरा टाइम टेबल उतारकर मुझे पकडाया। फिर मेरी कठिनाई का निवारण भी किया। अपनी एक पुरानी महिला सहयोगी के टाइम टेबुल को फर बदल कर मेरी सुविधानुसार उसका समायोजन किया और मुझे आवश्यकतानुसार पठनीय सामग्री और पुस्तके न केवल बताई बल्कि एक दो पुस्तके दी भी शेष देने का आश्वासन दिया। कई दिना तक रोज मेरी खोज खबर लेते रहे।

अनुशासन की दृष्टि से वह भी विश्वविद्यालय का काला काल था। प्राइवेट विद्यार्थियो को बैठने का प्रावधान कर दिया गया था। एक वर्ष दो परीक्षाओ मे एक रेगुलर और एक प्राइवेट बैठने की छूट थी। लॉ रेगुलर और एम०ए० प्राइवेट वाले ढेर विद्यार्थी कक्षाओ मे घुस आते थे और तबियत से हगामा और बवाल मचाते। जे० के० इन्स्टीट्यूट बिल्डिग ऐसे छात्रो का सबसे पसदीदा स्थान था। ऐसे मे कक्षा पढ़ाना जग मे हिस्सा लेने जैसा था। घर मे मुझे सख्त हिदायत दी जाती कि यदि मैंने अध्यापन के प्रथम वर्ष मे अपने को ठीक से स्थापित नही किया तो आजीवन अनुशासनहीनता भुगतती रहूँगी। अत मै पूरे दिलोजान से कक्षा नियत्रित करने की चेष्टा करती। क्लास मे पूरी तैयारी से जाना दाहिने बॉये पीछे सब तरफ निगाह दौडाते रहना हाजिरी लेते समय प्राक्सी बोलने वाले को ताडना आदि अस्त्रो का प्रयोग मुझे बताया गया था। इस सम्पूर्ण आयोजन मे डॉ० वर्मा द्वारा पुस्तको का दिया जाना और साथ ही मनोबल बढाने वाले उनके सवाद कैपसूल मेरे सबल सबल थे।

इस सरक्षणात्मक सौहार्दपूर्ण व्यवहार के कुछ सप्ताह ही व्यतीत हुए थे। एक दिन प्रोफेसर वर्मा ने अपने एक तत्कालीन अति आत्मीय एव प्रिय शोध छात्र अस्थायी अध्यापक के अप्रत्यक्ष रूप से पक्ष मे एक अर्जी देने को मुझसे कहा। मुझे याद आया कि मुझे दी गई हिदायतो मे फिलहाल विश्वविद्यालय की राजनीति मे न पडने की भी एक हिदायत थी। अपने विवेक से भी यह कार्य मुझे कुछ सार्थक नही लग रहा था। मेरे अपने हित साधन के लिए बताई गई जिस अर्जी को देने की बात थी परोक्ष मे वह जिन सज्जन के लाभार्थ थी उसे भी मैंने भॉप लिया था। उन सज्जन के प्रति मेरी सक ात्मक राय ०ब थी और न अब है (कालान्तर मे डॉ० वर्मा भी उनसे बहुत दु खी खिन्न और निराश हुए)। अत मैंने अपनी समझ मे पूरी विनम्रता से डॉ० वर्मा से उस कार्य के प्रति अपनी असहमति व्यक्त कर दी। बस न सुनना वह भी उस सहयोगी से जिसे वे पिछले कई सप्ताहो से पूरी तरह मदद कर रहे थे डॉ० वर्मा के लिए असह्य था। वे बिगड उठे। डॉ० वर्मा जब ज्यादा औपचारिक होते थे या ज्यादा गुस्से मे होते थे तो अग्रेजी का प्रयोग करते थे।

बोले आल राइट। बट आई डोन्ट अन्डरस्टैन्ड दिस ऐटीट्यूड। माइन्ड योर

ओन बिजनेस। आई एम नाट गोइग टु हेल्प यू। आई शैल नाट गिव यू एनी बुक। स्टाफ रूम मे कुर्सी से उठते उठते मुझे डपटा और बिना मेरी प्रतिक्रिया की परवाह किये या मुझ एक भी शब्द बोलने का मौका दिये जन्नाटे से बाहर चले गये।

मैं वही कुर्सी पर बैठ गई। काफी देर बैठी रही। कुछ प्रकृतिस्थ हुई तो घर लौटी। दो तीन दिन तक जबरदस्त अवसाद रहा। अगले दिनो मे डॉ० वर्मा से कभी सामना भी हुआ तो उन्होने मेरा अभिवादन स्वीकारना तो दूर मुझे अभिवादन करने का मौका ही नही दिया। नाराज होने पर अस्थायी रूप से बातचीत बद कर देना वर्मा जी का तरीका था। इस सवादहीनता की अवधि का निर्धारण कई तत्त्वो पर निर्भर था। आगे आने वाले प्रसगो मे कुछ स्पष्ट हो जायेगा।

उधर मुझे स्नब करने के बाद डॉ० वर्मा यथानुरूप स्टाफ क्लब चले गये और अपने मित्रा के बीच उन्होने इस घटना या दुर्घटना का जिक्र करने के बाद कहा कि मैंने कह दिया कि अब मैं आपको कोई किताब नही दूँगा ।

मुझे बाद मे पता चला कि उन मित्रो की वहाँ जो प्रतिक्रिया हुई वह डॉ० वमा की आशा के विपरीत निकली। अन्य अध्यापको के साथ राजनीतिशास्त्र विभाग के डॉ० राजेन्द्र अवस्थी भी वहाँ थे। डॉ० अवस्थी भी विद्या और क्रोध के समान धनी थे। अपने क्रोध पर काबू कर पाना उनके वश मे नही था लेकिन न जाने उन्हे क्या लगा– उन्होने वर्मा जी को मुझे सीरियस्ली स्नब करने पर तो सहमति जताई परन्तु किताब न देने की बात उन्हे नही सुहाई।

बोले आपकी विद्यार्थी है जूनियर कोलीग है नई अपाइटी है किताब आप नही देगे यह तो कोई अच्छी बात नही है। किताब देने का यदि आपने वायदा किया है और वह पुस्तक अभी कही मिल भी नही रही है तो वह तो आपको देनी ही चाहिये। मामला वहाँ उलझ गया।

अब स्थिति यह थी कि मेरा तो उनसे बात करने का ही साहस नही था और वे स्वय मुझे पुस्तक देने आते यह डॉ० वर्मा के लिए असभव था। तीन चार दिन बाद एक दिन डॉ० राजेन्द्र अवस्थी का मेरे घर मे फोन आया। मैंने सोचा पिताजी से बात करना चाहते होगे क्योकि मैंने शायद उनके पूरे जीवन मे दो चार बार ही उनसे बातचीत की होगी। केवल सामने पडने पर नमस्ते का शिष्टाचार निर्वाह भर रहा था। राजनीतिशास्त्र की कभी छात्रा भी नही रही थी अत उस औपचारिकता से भी मैं मुक्त थी। इसलिए जब भाई या बहन ने बताया कि नही वे मुझसे ही बात करना चाहते हैं तो आश्चर्य और आशका के मिले जुले भाव के साथ हलो से सवाद शुरू किया। डॉ अवस्थी पूछ रहे थे कि मुझे कोई किताब डॉ० वर्मा ने देने को कही थी और फिर बिना मेरे हाँ ना की प्रतीक्षा किये उन्होने

कोई बात नही वे कल वह किताब मुझे चपरासी से भेज देगे। मुझे जब तक आवश्यकता है मै इसे रख सकती हूँ। इस एकागी सवाद का समापन मेरी ओर से जी ठीक है थैंक्यू सर मे हुआ। फोन का चोगा रख कर फिर मै ऊहापोह मे पड गई। डॉ० अवस्थी को यह सब कैसे पता चला। पता नही क्या हुआ होगा। कही पिताजी को तो नही यह सब ज्ञात हो गया आदि। खैर अगले दिन पुस्तक मिल गई। पुस्तक की जिल्द और पहला पृष्ठ उल्टा तो सबसे पहले डॉ० वर्मा के हस्ताक्षरो पर नजर पडी। फिर यह बूझना कठिन न रहा कि पुस्तक डॉ० वर्मा द्वारा ही दी गई है। उसे मैंने अपनी आवश्यकतानुसार कम से कम समय अपने पास रखा और फिर डॉ० अवस्थी से फोन पर इजाजत लेकर मै स्वय उसे डॉ० वर्मा को ही वापस करने गई। वे स्टाफ क्लब मे एक दो अध्यापको के साथ बैठे थे। मैंने पुस्तक उनके सामने मेज पर रखी–

सर! मेरा काम हो गया है यह पुस्तक आपको दे दूँ या घर भेज दूँ।

उन्होने बिना सिर उठाये पुस्तक पकड ली। ठीक है। आई विल टेक केयर आफ इट।

दूसरे दिन से मेरा अभिवादन पुन स्वीकार्य हो गया। स्थिति सामान्य आने मे कुछ समय लगा। लेकिन उसका कारण कुछ अन्य जे बिन काज दाहिने बाएँ वाले तत्त्व थे। जिन सहयोगियो के गले मेरी नियुक्ति नही उतरी थी वे कुछ न कुछ विष वमन करते रहते थे। उसका यत्किंचित प्रभाव झेलना भी मेरी नियति बनी ही रही।

डॉ० वर्मा के प्रोफसर होने के बाद मै उन्ही के स्थान पर रीडर हुई। हम लोगो को डॉ० वर्मा के प्रोफेसर बनने पर विभाग मे कुछ गुणात्मक सुधार होने की काफी आशा थी। विभाग की सामाजिक परिस्थितियाँ तथा वर्मा जी की वैयक्तिक स्वास्थ्यगत स्थितियाँ हमारी इस आशा के फलीभूत होने मे बाधक रही। वर्मा जी की सक्रियता धीरे धीरे कम हो रही थी। अपने जीवन के तीन दशक पूरे करते करते उन्हे हार्ट अटैक हो गया था। तब से वे बराबर हृदयरोग से पीड़ित रहे। बाद मे साधारण असाधारण कई अटैक और पड़े और इसी बीच एक बार गिर जाने पर उनके मेरुदण्ड मे गभीर चोट आ गई थी। वे अस्पताल मे भर्ती थे। हम लोग उन्हे देखने गये। अपने रोगो की व्याख्या करते हुए वे कह रहे थे

अब किसी को कोई शक नही होना चाहिये। आई हैव प्रूव्ड दैट आई एम नाट हार्टलेस एण्ड आई डू हैव ए स्पाइन । इस बात को वे आजीवन सिद्ध करते रहे न दिल से तहदिल हुए से न रीढ़ से राहत मिली। दवाइयो पर दवाइयाँ खाते खाते गुर्दे भी बीमार हो गये थे किन्तु डॉ० वर्मा की मानसिकता मानस मथन और बुद्धि विलास मे किंचित अतर नही आया था। उनका मानसिक स्वास्थ्य तनिक भी विशृखलित नही हुआ था।

डॉ० मेहरोत्रा के सेवानिवृत्त होने पर वे विभागाध्यक्ष हुए थे। विभागाध्यक्ष रूप मे कार्यरत होने पर कभी उन्होने बड़े सपने सँजोये थे विभाग के लिये। कितनी ही कल्पनाएँ की

ओन बिजनेस। आई एम नाट गोइग टु हेल्प यू। आई शैल नाट गिव यू एनी बुक। स्टाफ रूम मे कुर्सी से उठते उठते मुझे डपटा और बिना मेरी प्रतिक्रिया की परवाह किये या मुझ एक भी शब्द बोलने का मौका दिये जन्नाटे से बाहर चले गये।

मै वही कुर्सी पर बैठ गई। काफी देर बैठी रही। कुछ प्रकृतिस्थ हुई तो घर लौटी। दो तीन दिन तक ज्बरदस्त अवमाद रहा। अगले दिनो मे डॉ० वर्मा से कभी सामना भी हुआ तो उन्होने मेरा अभिवादन स्वीकारना नो दूर मुझे अभिवादन करने का मौका ही नही दिया। नाराज होने पर अस्थायी रूप से बातचीत बद कर देना वर्मा जी का तरीका था। इस सवादहीनता की अवधि का निर्धारण कई तत्त्वो पर निर्भर था। आगे आने वाले प्रसगो मे कुछ स्पष्ट हो जायेगा।

उधर मुझे स्नब करने क बाद डॉ० वर्मा यथानुरूप स्टाफ क्लब चले गये और अपने मित्रो के बीच उन्होने इस घटना या दुर्घटना का जिक्र करने के बाद कह कि मैने कह दिया कि अब मैं आपको कोई किताब नही दूँगा ।

मुझे बाद मे पता चला कि उन मित्रो की वहाँ जो प्रतिक्रिया हुई वह डॉ० वर्मा की आशा के विपरीत निकली। अन्य अध्यापको के साथ राजनीतिशास्त्र विभाग के डॉ० राजेन्द्र अवस्थी भी वहॉ थे। डॉ० अवस्थी भी विद्या और क्रोध के समान धनी थे। अपने क्रोध पर काबू कर पाना उनके वश मे नही था लेकिन न जाने उन्हे क्या लगा– उन्होने वर्मा जी को मुझे सीरियस्ली स्नब करने पर तो सहमति जताई परन्तु किताब न देने की बात उन्हे नही सुहाई।

बोले आपकी विद्यार्थी है जूनियर कोलीग है नई अपाइटी है किताब आप नही देगे यह तो कोई अच्छी बात नही है। किताब देने का यदि आपने वायदा किया है और वह पुस्तक अभी कही मिल भी नही रही है तो वह तो आपको देनी ही चाहिये। मामला वहाँ उलझ गया।

अब स्थिति यह थी कि मेरा तो उनसे बात करने का ही साहस नही था और वे स्वय मुझे पुस्तक देने आते यह डॉ० वर्मा के लिए असभव था। तीन चार दिन बाद एक दिन डॉ० राजेन्द्र अवस्थी का मेरे घर मे फोन आया। मैंने सोचा पिताजी से बात करना चाहते होगे क्योकि मैंने शायद उनके पूरे जीवन मे दो चार बार ही उनसे बातचीत की होगी। केवल सामने पडने पर नमस्ते का शिष्टाचार निर्वाह भर रहा था। राजनीतिशास्त्र की कभी छात्रा भी नही रही थी अत उस औपचारिकता से भी मैं मुक्त थी। इसलिए जब भाई या बहन ने बताया कि नही वे मुझसे ही बात करना चाहते हैं तो आश्चर्य और आशका के मिले जुले भाव के साथ हलो से सवाद शुरू किया। डॉ अवस्थी पूछ रहे थे कि मुझे कोई किताब डॉ० वर्मा ने देने को कही थी और फिर बिना मेरे हाँ ना की प्रतीक्षा किये उन्होने कहा कि वस्तुत वह पुस्तक वर्मा जी के पास नहीं है। मैंने डॉ० अवस्थी से क्यो नहीं माँगी

कोई बात नही वे कल वह किताब मुझे चपरासी स भेज देगे। मुझे जब तक आवश्यकता है मै इसे रख सकती हूँ। इस एकागी सवाद का समापन मेरी ओर से जी ठीक है थैंक्यू सर मे हुआ। फोन का चोगा रख कर फिर मै ऊहापोह मे पड गई। डॉ० अवस्थी को यह सब कैसे पता चला। पता नही क्या हुआ होगा। कही पिताजी को तो नही यह सब ज्ञात हो गया आदि। खैर अगले दिन पुस्तक मिल गई। पुस्तक की जिल्द और पहला पृष्ठ उल्टा तो सबसे पहले डॉ० वर्मा के हस्ताक्षरो पर नजर पडी। फिर यह बूझना कठिन न रहा कि पुस्तक डॉ० वर्मा द्वारा ही दी गई है। उसे मैने अपनी आवश्यकतानुसार कम से कम समय अपने पास रखा और फिर डॉ० अवस्थी से फोन पर इजाजत लेकर मै स्वय उसे डॉ० वर्मा को ही वापस करने गई। वे स्टाफ क्लब मे एक दो अध्यापको के साथ बैठे थे। मैंने पुस्तक उनके सामने मेज पर रखी–

सर! मेरा काम हो गया है यह पुस्तक आपको दे दूँ या घर भेज दूँ।

उन्होने बिना सिर उठाये पुस्तक पकड ली। ठीक है। आई विल टेक केयर आफ इट।

दूसरे दिन से मेरा अभिवादन पुन स्वीकार्य हो गया। स्थिति सामान्य आने मे कुछ समय लगा। लेकिन उसका कारण कुछ अन्य जे बिन काज दाहिने बाएँ वाले तत्त्व थे। जिन सहयोगियो के गले मेरी नियुक्ति नही उतरी थी वे कुछ न कुछ विष वमन करते रहते थे। उसका यत्किचित प्रभाव झेलना भी मेरी नियति बनी ही रही।

डॉ० वर्मा के प्रोफेसर होने के बाद मै उन्ही के स्थान पर रीडर हुई। हम लोगो को डॉ० वर्मा के प्रोफेसर बनने पर विभाग मे कुछ गुणात्मक सुधार होने की काफी आशा थी। विभाग की सामाजिक परिस्थितियॉ तथा वर्मा जी की वैयक्तिक स्वास्थ्यगत स्थितियॉ हमारी इस आशा के फलीभूत होने मे बाधक रही। वर्मा जी की सक्रियता धीरे धीरे कम हो रही थी। अपने जीवन के तीन दशक पूरे करते करते उन्हे हार्ट अटैक हो गया था। तब से वे बराबर हृदयरोग से पीड़ित रहे। बाद मे साधारण असाधारण कई अटैक और पड़े और इसी बीच एक बार गिर जाने पर उनके मेरुदण्ड मे गभीर चोट आ गई थी। वे अस्पताल मे भर्ती थे। हम लोग उन्हे देखने गये। अपने रोगो की व्याख्या करते हुए वे कह रहे थे

अब किसी को कोई शक नही होना चाहिये। आई हैव प्रूव्ड दैट आई एम नाट हार्टलेस एण्ड आई डू हैव ए स्पाइन । इस बात को वे आजीवन सिद्ध करते रहे न दिल से तहदिल हुए से न रीढ़ से राहत मिली। दवाइयों पर दवाइयाँ खाते खाते गुर्दे भी बीमार हो गये थे किन्तु डॉ० वर्मा की मानसिकता मानस मथन और बुद्धि विलास मे किंचित अतर नही आया था। उनका मानसिक स्वास्थ्य तनिक भी विशृखलित नही हुआ था।

डॉ० मेहरोत्रा के सेवानिवृत्त होने पर वे विभागाध्यक्ष हुए थे। विभागाध्यक्ष रूप मे कार्यरत होने पर कभी उन्होने बड़े सपने सँजोये थे विभाग के लिये। कितनी ही कल्पनाएँ की

थी लेकिन अब उनका प्रतिकूल स्वास्थ्य और शष सेवा की अल्प अवधि दोनो ही उसके विरुद्ध थी। केवल २० माह के लिए वे अध्यक्ष हुए वह भी उस स्थिति मे जब कि कुछ कदम चलने के बाद उनकी सॉस फूलने लगती थी और जीना चढना उनके लिए असभव था। विभाग मे अध्यक्ष का कमरा पहली मजिल पर था जिसे उन्होने अध्यक्ष होने के बाद कभी देखा ही नही। अपने कमरे मे ही बैठते रहे। वही कार्यालय सहायक को भी बिठा लेते थे। कार्य सचालन क लिए उन्हे सहयोगियो से सक्रिय सहयोग की अपेक्षा रहती थी जिसके लिये अधिकाश के पास समय का अभाव था। आज विश्वविद्यालय के अध्यापक के पास विश्वविद्यालयेतर काम इतने अधिक होते है कि विभाग की बेगार मे लगना उसके लिए सभव ही नही होता। मैं भी उस समय कैलास छात्रावास की प्रोवोस्ट थी मेरे समय का एक बडा भाग छात्रावास मे बीतता था। विभाग की कक्षाएँ तब प्राय बारह एक बजे समाप्त हो जाती थी। मेरा कमरा पहली मजिल पर था और वहॉ मै १ बजे तक अवश्य उपलब्ध रहती थी। वे आवश्यकता पडने पर मुझे बुला लेते थे। विभाग के प्रति सदैव सकारात्मक सहभागिता मेरी सेवा का अग है यह मेरे पारिवारिक समाजीकरण की सीख थी। उसका निर्वाह मैने यथाशक्ति आद्योपान्त किया।

लखनऊ विश्वविद्यालय का समाजशास्त्र विभाग भारतवर्ष का एक अति प्रतिष्ठित विभाग रहा है बहुत बातो मे अतुलनीय। इस विभाग मे मुकदमेबाजी के भी अपने कीर्तिमान है। १९९० तक प्राय पचीस वर्ष इस विभाग मे कोई भी ऐसी नियुक्ति नही हुई होगी जिस के लिए मुकदमा न हुआ हो। ऐसे ऐसे दिग्गज महारथी जिन्होने अपने गुरु की नियुक्ति को भी चुनौती दी और अपने शिष्य को भी। इसी शृखला मे डॉ० वर्मा के खिलाफ भी मुकदमो की बौछार रही और मुकदमे निबट गये तो भी मनमुटाव नही गया। उनके अध्यक्ष होने पर उनके विरुद्ध काफी लामबदी शुरू हो गई। देश के तमाम समाजशास्त्रियो को उनके खिलाफ गुमनाम पत्र मिलने लगे। विभाग मे उनके ही पास ऊटपटॉग चिट्ठियॉ आने लगी। फिर मेरे विरुद्ध भी २०० २५० पृष्ठो के रिप्रेजेन्टेशन्स राष्ट्रपति से लेकर राज्यपाल और मुख्यमत्री को किये जाने लगे। इनकी सूचना सबधित कार्यालयो से विभागाध्यक्ष को मिलने लगी। इस पूरे प्रकरण मे मै और प्रोफेसर वर्मा एक ही प्रकार के वार के शिकार थे अतर इतना था कि उन्हे अज्ञात पत्र मिलते थे और मेरे विरुद्ध बाकायदा नाम सहित शिकायते हो रही थी। मेरा कसूर यह था कि मै भी आचार्य पद की प्रत्याशी थी। मै अपनी आचार्य पद पर नियुक्ति के प्रति अक्सर कुछ विरक्त सी हो जाती थी। इस पर डॉ० वर्मा की एक ही प्रतिक्रिया होती थी बस

तुम अपाइट हो या न हो आभा! पर तुम्हारा इन्टरव्यू अच्छा होना चाहिये। मुझे वहाँ यह न लगे कि वहाँ तुम्हारा Performance poor हो गया।

उन्होने जब कई बार यह बात मुझसे कही तो एक बार मैंने कहा–

'सर। कभी किसी ने पहले आपसे कहा कि मैंने इन्टरव्यू अच्छा नही दिया ?

वर्मा जी हँसने लगे हाँ पहले किसी ने नही कहा पर इस बार भी न कहे

मैं उनका मनोभाव समझ रही थी। आचार्य पद पर मेरी नियुक्ति ईश्वर कृपा से हो गई। उसमे क्या क्या नही हुआ वह सपूर्ण पृथक प्रकरण है दिलचस्प आश्चर्यजनक और ज्ञानवर्द्धक।

मेरे प्रोफेसर होने के कुछ ही दिनो बाद प्रोफेसर वर्मा को सेवानिवृत्त होना था और मुझे विभागाध्यक्ष। विभाग की विपरीत विकट परिस्थितियो मे अध्यक्षत्व का कोई उत्साह मेरे मन मे नही था। वर्मा जी भी असामान्य रूप से शान्त थे लेकिन प्रसन्न थे। ९ दिसम्बर को चार्ज का आदान प्रदान होना था। आठ तारीख को प्रोफेसर वर्मा ने केवल दो अति आत्मीय जनो से अगले दिन १२ बजे अपने कमरे मे रहने के लिए कहा। कार्यालय सहायक से कहा कि वह चार्ज सर्टिफिकेट की प्रतियॉ लेकर वहाँ आ जायेगा। मुझे भी १२ बजे पहुँचने का आदेश दिया। तदनुरूप ९ ता० की सुबह की एक कक्षा पढ़ाकर १२ बजे मैं उनके कमरे मे जाकर उनके ठीक सामने की कुर्सी पर बैठ गई। डॉ० वर्मा थोडी देर तक इधर उधर की दिलचस्प बाते करते रहे। तभी उन्होने भारती बाबू (कार्यालय सहायक) से चार्ज सर्टिफिकेट मॉगे। उन्हे पूरी तरह से भरवाया भरा और अपने सामने मेज पर रख कर बैठ गये। फिर कुछ बाते होती रही। बीच बीच मे वे घडी देख रहे थे। उन्होने अपने हस्ताक्षर उन सर्टिफिकेटस पर कर दिये। उसके बाद अपने झोले से डिब्बे मे रखा एक शैफर्स पेन निकाला। उसमे ताजी ताजी स्याही भरी गई थी।

वह पेन उन्होने मुझे डिब्बा खोल कर डिब्बे सहित दिया और फिर स्नेह सिक्त स्वर मे कहा इस पेन से इन सर्टिफिकेटस पर हस्ताक्षर कर दो।

मैं अपना उस समय का मनोभाव शब्दो मे व्यक्त नही कर सकती हूँ किन्तु इतना अवश्य है कि मैं उस समय न सहज थी न सामान्य हाँ सयत रहने की कोशिश जरूर कर रही थी। मैंने हस्ताक्षर कर दिये उनके आदेश पर तिथि भी डाली। वे फिर घडी देखने लगे और बडी सुई ठीक १२ पर आते ही पूरे एक बजे उठ कर खडे हो गये अपनी कुर्सी छोड कर मेरी तरफ आ गये। मुझसे कहा कि चलो उस कुर्सी पर बैठो। मैं उठ कर खड़ी तो हो गई थी किन्तु उधर की कुर्सी पर जाने के लिए जैसे पैर उठ ही नही रहे थे। मेरी प्रवक्ता पद पर नियुक्ति के समय जैसे उन्होने मेरा मनोबल बढाया था उसी भाव से मुझे अपनी कुर्सी पर बैठने के लिए प्रेरित किया और मेरे कुर्सी पर बैठते ही मेरे गुरु मेरे वरिष्ठ सहयोगी प्रोफेसर एस०सी० वर्मा ने मुझे औपचारिक बधाई दी। फिर मेरी मेज पर मेरे सामने शीशे के ऊपर एक गुलाब की डडी सहित कली रख दी आभा इसमे कॉंटे भी हैं गॉड ब्लेस यू' और उस क्षण कमरे का वातावरण जैसे नि शब्द हो गया। मैं पता नही कहाँ थी वर्मा जी को तो ईश्वर मे विश्वास ही नही है फिर ऐसा हुआ क्यो ? मैं शायद सोच रही थी कि वर्मा जी

जोर से बोले अरे भई भारती ! वो तुम्हारे रसगुल्ले कहाँ हैं यार! मिठाई तो खिलाओ।

उस मिठाई का स्वाद आज भी मेरे मन मे बसा है। इतने शान्त सुरुचिपूर्ण और हृदयग्राही रूप से क्या कभी किसी ने चार्ज लिया होगा। बडे बडे आयोजन पार्टियाँ और फूल मालाएँ इस नितान्त सार्थक भावभीने आयोजन पर न्योछावर होते लगे। उस दिन वर्मा जी के प्रति मेरे मन मे जो विशेष श्रद्धा का भाव जगा वह निरतर बढता गया। प्रोफेसर वर्मा का मेरे साथ जिस प्रकार का बर्ताव रहा वह औपचारिकता और आत्मीयता का अदभुत समन्वय था।

दिसम्बर से जून तक प्रोफेसर वर्मा विभाग मे आचार्य पद पर थे पर अध्यक्ष नहीं थे। उन्हे बहुत सी बाते मुझसे कहनी बतानी होती थी। मेरा कमरा ऊपर था। मैं आते जाते समय उनके कमरे के सामने से जाती थी। यदि वे होते तो मिल लेती वरना मेरा यह अनुरोध था कि वे मुझे बुलवा लेगे। वर्मा जी ने इन छ महीनो मे कभी भी मुझे चपरासी से या मौखिक आदेश से नही बुलाया। यदि वे कार्यालयीय विभागीय काम से बुलाते थे तो 'डियर प्रोफेसर से सबोधित करते थे और यदि अनौपचारिक रूप से कोई बात करनी होती थी तो मेरे नाम से सबोधित करके पत्र भेजते थे। यह पत्र हमेशा वे अपने लेटर हेड पर भेजते थे। इन पत्रो की एक मोटी गड्डी मेरे मूल्यवान पत्रो के सग्रह का एक अमूल्य हिस्सा है।

डॉ० वर्मा के सेवानिवृत्त हो जाने के बाद उनकी गतिशीलता प्राय अवरुद्ध हो गई थी। वे अपने घर तक ही सीमित हो गये थे। पूरे पूरे दिन स्टाफ क्लब मे गप्पे लगाने वाले प्रतिदिन हजरतगज घूमने वाले और विन्डो शापिंग के शौकीन डॉ० वर्मा अपने अध्ययन कक्ष बैठक टी०वी० कक्ष के ऑल इन वन कमरे मे सीमित हो गये थे। ९ ता० को मुझे चार्ज दिया अगले दिन उनकी वर्षगॉठ थी। मैं कुछ फूल लेकर उन्हें विश' करने गई। यो तो घर मे सभी लोग बहुत प्रसन्न हुए पर वहाँ मुझे अपनी गल्ती का कुछ एहसास हुआ। वहॉ एक सामिष लच का आयोजन था। एक अध्यापक मदिरा की एक बोतल लेकर आये थे। अदर से शायद मुर्गा पकने की गध आ रही थी। मैं अपनी निरर्थकताबोध से ग्रस्त वहाँ से वापस आई थी।

उसके बाद मैने कभी भी उनकी वर्षगाँठ पर वहाँ जाने का मन नही बनाया परन्तु उस तिथि के थोडे बहुत अन्तराल से मै उनसे मिलने अवश्य जाती थी। मेरी ये मुलाकाते वास्तव मे बडी सरस और अपनेपन से भरी हुई रही। श्रीमती वर्मा यानी भाभी जी से नजदीकी भी तभी हुई। बहू इला नन्ही काकी छोटा बिन्दु सभी कभी इकट्ठे कभी बारी बारी से वहाँ आकर बैठ जाते। बातो का सिलसिला इतना लम्बा चलता कि ३ ४ घण्टे तक बीत जाते थे एक बार चाय फिर एक बार काफी और फिर नही नही अब मैं जाऊँगी' और बडी मुश्किलो से हम अपने को ठेलते हुए वहाँ से उठते। डॉ० वर्मा तब तक चलने मे भी काफी असमर्थ हो गये थे लेकिन कभी भी ऐसा नही हुआ कि वे घर के बाहर फाटक तक मुझे

छोडने न आये हो। भाभी जी बिन्दु मै या इला किन्हा भी दो लोगो का सहारा लेकर वे आते और फिर स्वय गेट खोलते। मैं गेट से बाहर होकर जब गेट बन्द करती तो वे दोनो हाथ गेट पर रख कर खडे हो जाते। गाडी बैक करके जब तक मैं गेट के सामने से निकल कर हाथ हिलाकर अभिवादन न करती सभी के साथ वे वहाँ खड़े रहते।

इन मुलाकातो के प्रसग जितने सवेदनात्मक सामान्य ज्ञानवर्धक और आश्चर्यजनक होते थे प्राय उतने ही मजेदार भी। डॉ० वर्मा का स्वभाव बडा विनोदी भी था। भाषा के विलक्षण प्रयोग उनकी कपनी को और भी रोचक बना देते थे। एक बार भीड से बचने के लिए मैं गाडी को कही आधे रास्ते मे पार्क करके उनके घर रिक्शे से चली गई थी। लौटते समय उन्हे मुझे भेजने की चिन्ता हो गई। उन्होने अपने दत्तक पुत्र बिन्दु से कहा

जाओ देखो। एक रिक्शा देख कर ले आओ।

देख कर ले आओ या ऐसे ही कुछ शब्द उन्होने शायद कोड रूप मे प्रयोग किये थे जिन्हे बिन्दु ने समझ लिया था वह चला गया। हम लोग धीरे धीरे चल कर फाटक तक आ गये। इतने म एक रिक्शावाला आया। प्रोफेसर वर्मा ने मुझे जहाँ तक भी जाना हो पहुँचाने का आदेश दिया। रिक्शेवाले से अपना गन्तव्य बताने के ध्येय से मैंने बात करनी चाही।

डॉ० वर्मा ने तुम बीच मे मत बोलो का मुझे स्पष्ट निर्देश दिया और फिर रिक्शेवाले की ओर मुखातिब हो गये।

मैंने कहा मैं यह बताना चाह रही थी ।

वर्मा जी बात के बीच मे बोले यह अपना जे०पी० वाला आदमी है हमारा इन्टरनल मामला है तुम चुपचाप बैठो और जाओ। पैसे यह तुमसे नहीं लेगा। देना भी मत।

मैं चौकी जे०पी० वाले आदमी से क्या मतलब ? मुझे जयप्रकाश नारायण की याद आ रही थी।

उनसे उत्तर मिला वही जे०पी० वाला यानी जान पहचान वाला सबके सामूहिक अट्टहास के साथ बिना प्रतिवाद मैं रिक्शे मे बैठ गई।

जीवन के अतिम दिनो मे प्रोफेसर वर्मा बडे भावुक हो गये थे। टेलीफोन उन्होने कभी नहीं लगवाया था। एकाध बार हम लोगो ने कहा तो बोले हम अपनी स्वतत्रता डिस्टर्ब नही करना चाहते। जिसे इच्छा हो वह मिलने आये। वे कहते थे अब वे चिट्ठियाँ ज्यादा लिखने लगे है। मुझे भी कई पत्र उन्होने लिखे बड़े ही सहज और सद्य प्रतिक्रियात्मक। एक बार उन्होने लिखा तुमने 'बाम्बे देखी है ? न देखी हो तो जरूर देखना। मुझे तो टी०वी० पर आने तक या वी०सी०आर० प्रति मिलने तक इन्तजार करना पड़ेगा।

इसके बाद दूसरे ही दिन मै मिलने गई तो बोले मैने उसी समय समीक्षा पढी तो सोचा तुम्हे राय दे दूँ देखने की।

मेरे चाचा जी कहा करते थे कि किसी के घर मे आपका क्तिना स्वागत है यह वहाँ के छोटे बच्चो या नौकरो के व्यवहार मे सही सही परिलक्षित होता है क्योकि उनमे बनावट नही होती। वर्मा जी के यहॉ जाने पर घर के सारे लोग इतने अच्छे से मिलते थे कि मुझे वहाँ अपनी ग्राह्यता पर कोई सदेह नही होता था।

उस दिन डॉ० वर्मा अपेक्षाकृत ज्यादा कष्ट मे थे। भाभी जी ने कहा पीठ मे दर्द बढ गया है। थोडी देर मे वे थोडा सुस्थिर हो गये थे। उस दिन उन्होने बहुत सी बाते की। विश्वविद्यालय के बारे मे कई उन लोगो के विषय मे जिन्होंने मेरी आलोचना उनसे की थी और वे उनके प्रिय पात्र भी थे।

मैंने कहा आपसे इतनी लिबर्टी तों वे ले ही सकते है। पर आप पर इसका कोई प्रभाव नही पडा तो मुझे क्या चिन्ता ?

डॉ० वर्मा असामान्य रूप से गभीर हो गये। फिर जैसे स्वगत भाषण करने लगे आदमी कभी कभी जिससे डरता या घबराता है उससे भी प्यार करने लगता है या उसे अपना मानने लगता है या कभी कभी किसी को नजदीकी बनाना भी उसकी जरूरत या मजबूरी भी हो जाती है।

फिर मुझसे बोले आभा! मैं कई बार तुमसे नाराज हुआ हूँ तुमसे बोलना बद किया है लेकिन तुमने कभी अपनी लिमिटस को नही तोडा HOD होने के बाद भी तुमने मर्यादा निभायी है अब किसी के भी कहने से मै तुम्हारे बारे मे राय नही बदल सकता। जो हो गया वह हो गया।

यह मर्यादा निर्वाह आपने ही मुझे सिखाया था सर ! अध्यक्ष होने के बाद आपने विभाग मे मुझे कभी मौखिक बुलावा नही भेजा। आपके इस बदले हुए तरीके से मैं केवल चकित ही नही हुई मैंने भविष्य के लिए कुछ सीखा भी है। मैंने अपनी बात कही थी।

फिर कभी भी विभाग मे घटी किसी घटना का सिहावलोकन हमने नही किया। यद्यपि कितनी ही ऐसी घटनाऍ घटी थी जो कि न भुलाई जा सकती है और न ही भुलाने योग्य है। इनमे सबसे महत्त्वपूर्ण है विभाग की इमारत का बँटवारा।

लखनऊ का समाजशास्त्र विभाग न केवल इस विश्वविद्यालय का वरन सम्पूर्ण भारतवर्ष का अति प्रतिष्ठित विभाग रहा था। भारत मे समाजशास्त्र मे अध्यापन शोध प्रारम्भ करने वाला बम्बई विश्वविद्यालय के बाद यह दूसरे स्थान पर था। लखनऊ विश्वविद्यालय की स्थापना के समय ही अर्थशास्त्र एव समाजशास्त्र का सयुक्त विभाग स्थापित हुआ था। अर्थशास्त्र के सान्निध्य मे समाजशास्त्र उससे प्रभावित ही रहा था जोकि

उस काल और उन परिस्थितियो मे आवश्यक भी था और वांछित भी लकिन फूला फला खूब। यहाँ के विद्यार्थी आर विद्यार्थियो के विद्यार्थी सारे भारत मे छा गये थे विदेशो मे भी यहाँ की कीर्ति पताका लहराई थी। बाद मे जब अर्थशास्त्र से समाजशास्त्र पृथक हुआ तो समाजशास्त्र एव समाज कार्य विभाग के नाम से नये विभाग की सृष्टि हुई। यह नया सयोग समाजशास्त्र के लिए बहुत शुभ नही रहा। इस पूरी अवधि म इस विभाग का अध्यक्षत्व समाजशास्त्रीविहीन ही रहा। समाज काय विशेषज्ञा की अध्यक्षता मे कभी शिष्टतावश तो कभी कनिष्ठतावश विभाग का समाजशास्त्रीय पक्ष उपेक्षित होता रहा। समाजशास्त्र के मूर्धन्य विद्वान अध्यापक भी एक एक कर विभाग छोड गये और उनके स्थानापन्न वर्षो वर्षों विश्वविद्यालय की अस्थायी सेवा व्यवस्था के शिकार रहे। विभाग के प्रति उदासीन रहना उनकी एक प्रकार से मजबूरी बनी रही। बीस वर्षो के समाज कार्य के गठबधन को तोडकर समाजशास्त्र विभाग स्वतत्र रूप मे आया तो कहने भर को तो एक समाजशास्त्री की छत्रछाया इसे मिली पर वस्तुत यह छत्रविहीन और छाया ही छाया सिद्ध हुई। दोनो विभागो का बॅटवारा केवल प्रशासनिक ही हुआ था भूमि भवन भण्डार सब साझे मे चल रहे थे अधिकाश कमरे और उनके फर्नीचर बाबू आदि सब समाज कार्य के हिस्से मे चले गये थे। समाजशास्त्र के पास क्या है क्या होना चाहिये आदि की सचेतनता कभी किसी की जागी ही नही। सौभाग्य से मेरी नियुक्ति स्वतत्र समाजशास्त्र विभाग मे हुई थी किन्तु जैसी अनाथावस्था मे वह विभाग चल रहा था उससे मुझे बडा क्लेश होता था। तत्कालीन अध्यक्ष जी विभागीय स्तर पर दुनियावी आकर्षण से विरक्तता दशाया करते। उनके कमरे से कभी ट्यूब लाइट निकल जाती तो कभी बल्ब फिर जब दफ्तर की मेज का एक मात्र आभूषण कलमदान भी चोरी हो गया तो उन्होने कार्यालय का सचल बना लिया। जब भी कोई कार्यालय विषयक कोई कार्य उनसे कहता तो वे तत्काल सुविधा मुहैया करा देते। उनके हाथ के बैग मे विभागाध्यक्ष की मोहर स्टैम्प पैड और लेटर हेड मौजूद रहते और वे सगर्व सहर्ष बतात कि पूरा विभाग का विभाग वे किस प्रकार साथ लिये फिरते है। यहाँ विभाग मे पूर्ण स्वराज्य था छात्रो छात्राओ और अन्य सभी क लिए। उधर साझे की खती मे कक्षाओ की और भी दुर्दशा थी। वहाँ की मेज कुर्सियाँ कुछ तो आधी तिहाई हाकर कोनो मे ढेर थी और कुछ अलग अलग लोगो की सामर्थ्य और पदानुसार उनक घरा की शोभा बढा रही थी।

अध्यक्ष होने क बाद विभाग के प्रति अपने दायित्व की कुछ सुइयाँ जैसी मुझे चुभने लगी। अब पहला काम इन सुइयो का सही क्रमाल मे सजाना था यानी प्राथमिकता निर्धारण। सबस पहले मै कक्षाओ की स्थिति सुधारना चाह रहो थी क्योकि जे०के० भवन के प्रथम तल की कक्षाआ मे (जिनमे एक साथ २०० तक विद्यार्थी पढते थे) दस दस बारह बारह कुर्सियाँ और पचीस तीस मेजे ही थी। फिर मेरे अध्यक्ष होने के कुछ ही दिनो बाद समाज कार्य क नय बने अध्यक्ष ने मुझसे कहा था कि इन दा कमरो मे फर्नीचर की व्यवस्था मुझे करवानी चाहिये क्योकि समाजशास्त्र की कक्षाये भी वहाँ होती है और उसक

इसके बाद दूसरे ही दिन मै मिलने गई तो बोले मैने उसी समय समीक्षा पढी तो सोचा तुम्हे राय दे दूँ देखने की।

मेरे चाचा जी कहा करते थे कि किसी के घर मे आपका कितना स्वागत है यह वहाँ के छोटे बच्चो या नौकरो के व्यवहार मे सही सही परिलक्षित होता है क्योकि उनमे बनावट नही होती। वर्मा जी के यहॉ जाने पर घर के सारे लोग इतने अच्छे से मिलते थे कि मुझे वहाँ अपनी ग्राह्यता पर कोई सदेह नही होता था।

उस दिन डॉ० वर्मा अपेक्षाकृत ज्यादा कष्ट मे थे। भाभी जी ने कहा पीठ मे दर्द बढ गया है। थोडी देर मे वे थोडा सुस्थिर हो गये थे। उस दिन उन्होने बहुत सी बाते की। विश्वविद्यालय के बारे मे कई उन लोगो के विषय मे जिन्होंने मेरी आलोचना उनसे की थी और वे उनके प्रिय पात्र भी थे।

मैने कहा आपसे इतनी लिबर्टी तों वे ले ही सकते है। पर आप पर इसका कोई प्रभाव नही पडा तो मुझे क्या चिन्ता ?

डॉ० वर्मा असामान्य रूप से गभीर हो गये। फिर जैसे स्वगत भाषण करने लगे आदमी कभी कभी जिससे डरता या घबराता है उससे भी प्यार करने लगता है या उसे अपना मानने लगता है या कभी कभी किसी को नजदीकी बनाना भी उसकी जरूरत या मजबूरी भी हो जाती है।

फिर मुझसे बोले आभा। मैं कई बार तुमसे नाराज हुआ हूँ तुमसे बोलना बद किया है लेकिन तुमने कभी अपनी लिमिटस को नही तोडा HOD होने के बाद भी तुमने मर्यादा निभायी है अब किसी के भी कहने से मै तुम्हारे बारे मे राय नही बदल सकता। जो हो गया वह हो गया।

यह मर्यादा निर्वाह आपने ही मुझे सिखाया था सर। अध्यक्ष होने के बाद आपने विभाग मे मुझे कभी मौखिक बुलावा नही भेजा। आपके इस बदले हुए तरीके से मै केवल चकित ही नही हुई मैंने भविष्य के लिए कुछ सीखा भी है। मैंने अपनी बात कही थी।

फिर कभी भी विभाग मे घटी किसी घटना का सिहावलोकन हमने नही किया। यद्यपि कितनी ही ऐसी घटनाएँ घटी थी जो कि न भुलाई जा सकती है और न ही भुलाने योग्य है। इनमे सबसे महत्त्वपूर्ण है विभाग की इमारत का बॅटवारा।

लखनऊ का समाजशास्त्र विभाग न केवल इस विश्वविद्यालय का वरन् सम्पूर्ण भारतवर्ष का अति प्रतिष्ठित विभाग रहा था। भारत मे समाजशास्त्र मे अध्यापन शोध प्रारम्भ करने वाला बम्बई विश्वविद्यालय के बाद यह दूसरे स्थान पर था। लखनऊ विश्वविद्यालय की स्थापना के समय ही अर्थशास्त्र एव समाजशास्त्र का सयुक्त विभाग स्थापित हुआ था। अर्थशास्त्र के सान्निध्य मे समाजशास्त्र उससे प्रभावित ही रहा था जोकि

उस काल और उन परिस्थितियो मे आवश्यक भी था और वाछित भी लकिन फूला फला खूब। यहॉ के विद्यार्थी आर विद्यार्थियो के विद्यार्थी सारे भारत मे छा गये थे विदेशो मे भी यहॉ की कीर्ति पताका लहराई थी। बाद मे जब अर्थशास्त्र स समाजशास्त्र पृथक हुआ तो समाजशास्त्र एव समाज कार्य विभाग के नाम मे नये विभाग की सृष्टि हुई। यह नया सयोग समाजशास्त्र के लिए बहुत शुभ नही रहा। इस पूरी अवधि मे इस विभाग का अध्यक्षत्व समाजशास्त्रीविहीन ही रहा। समाज कार्य विशेषज्ञा की अध्यक्षता मे कभी शिष्टतावश तो कभी कनिष्ठतावश विभाग का समाजशास्त्रीय पक्ष उपेक्षित होता रहा। समाजशास्त्र के मूर्धन्य विद्वान अध्यापक भी एक एक कर विभाग छोड गये और उनके स्थानापन्न वर्षो वर्षो विश्वविद्यालय की अस्थायी सेवा व्यवस्था के शिकार रहे। विभाग के प्रति उदासीन रहना उनकी एक प्रकार से मजबूरी बनी रही। बीस वर्षो क समाज कार्य के गठबधन को तोडकर समाजशास्त्र विभाग स्वतत्र रूप मे आया तो कहने भर को तो एक समाजशास्त्री की छत्रछाया इसे मिली पर वस्तुत यह छत्रविहीन और छाया ही छाया सिद्ध हुई। दोनो विभागो का बॅटवारा केवल प्रशासनिक ही हुआ था भूमि भवन भण्डार सब साझे मे चल रहे थे अधिकाश कमरे और उनके फर्नीचर बाबू आदि सब समाज कार्य के हिस्से मे चले गये थे। समाजशास्त्र के पास क्या है क्या होना चाहिये आदि की सचेतनता कभी किसी की जागी ही नही। सौभाग्य से मेरी नियुक्ति स्वतत्र समाजशास्त्र विभाग मे हुई थी किन्तु जैसी अनाथावस्था मे वह विभाग चल रहा था उससे मुझे बडा क्लेश होता था। तत्कालीन अध्यक्ष जी विभागीय स्तर पर दुनियावी आकर्षण से विरक्तता दशाया करते। उनके कमरे से कभी ट्यूब लाइट निकल जाती तो कभी बल्ब फिर जब दफ्तर की मेज का एक मात्र आभूषण कलमदान भी चोरी हो गया तो उन्होने कार्यालय को सचल बना लिया। जब भी कोई कार्यालय विषयक कोई कार्य उनसे कहता ता वे तत्काल सुविधा मुहैया करा देते। उनके हाथ के बैग मे विभागाध्यक्ष की मोहर स्टैम्प पेड और लेटर हेड मौजूद रहते और वे सगर्व सहर्ष बतात कि पूरा विभाग का विभाग वे किस प्रकार साथ लिये फिरते हे। यहॉ विभाग मे पूर्ण स्वराज्य था छात्रा छात्राओ और अन्य सभी के लिए। उधर साझे की खेती मे कक्षाओ की और भी दुर्दशा थी। वहॉ की मेज कुर्सियॉ कुछ तो आधी तिहाई होकर कोनो मे ढर थी और कुछ अलग अलग लोगो की सामर्थ्य और पदानुसार उनके घरा की शोभा बढा रही थी।

अध्यक्ष होने क बाद विभाग के प्रति अपने दायित्व की कुछ सुइयॉ जैसी मुझ चुभने लगी। अब पहला काम इन सुइयो को सही क्रमाल मे सजाना था यानी प्राथमिकता निर्धारण। सबस पहले मै कक्षाओ की स्थिति सुधारना चाह रहो थी क्योकि जे०के० भवन के प्रथम तल की कक्षाआ मे (जिनमे एक साथ २०० तक विद्यार्थी पढते थे) दस दस बारह बारह कुर्सियॉ और पचीस तीस मेजे ही थी। फिर मेरे अध्यक्ष होने के कुछ ही दिनो बाद समाज कार्य के नय बने अध्यक्ष ने मुझस कहा था कि इन दो कमरो मे फर्नीचर की व्यवस्था मुझे करवानी चाहिये क्योकि समाजशास्त्र की कक्षाय भी वहॉ हाती है और उसक

छात्रो की सख्या भी अधिक है। इसके बाद यह भी कि यदि मेरे वश मे यह न हो तो मै लिखित रूप से अपनी असमर्थता उन्हे या प्रशासन को व्यक्त कर दूँ। ऐसी स्थिति मे वे ही कुछ कोशिश करेगे। यह चुनौती मेरे लिए गभीर थी पीडादायक भी।

इस प्रसग मे एक घटना का उल्लेख यद्यपि प्रोफेसर वर्मा से नही जुडा है पर है बडा दिलचस्प साथ ही मेरे द्वारा विभाग के लिए उठाये गये कदमो के लिये नितान्त प्रेरक। पहले कभी मै सहायक डीन ऑफ स्टूडेन्ट वेलफेयर नियुक्त हुई थी। तब भी अपनी नियुक्ति को सार्थक बनाने का भूत मेरे ऊपर सवार था। कुर्सी घेर कर निरर्थक बैठना मुझे कभी नही भाया। हम चार लोग सहायक डीन थे कामर्स विभाग के श्री सक्सेना रसायन शास्त्र विभाग के डॉ० मुख्तार अग्रेजी विभाग के डॉ० डेविड और मै महिला प्रतिनिधि। इस प्रकार हमारी नियुक्तियाँ बडी धर्म निरपेक्ष भी थी। बहरहाल हम चारो ने दो दो की टोली मे हफ्ते मे तीन तीन दिन अधिष्ठाता कक्ष मे कुछ घण्टे उपलब्ध रहने का निर्णय लिया। एक टीम मे मैं और सक्सेना जी थे दूसरी मे डॉ० डेविड और मुख्तार साहब। इस अवधि मे हम विद्यार्थियो को निर्देशन/सलाह जैसे कार्यो का निर्वाह करते। इस मौलिक व्यवस्था का निर्वाह केवल हमारी टोली ने ही किया। न इसके पहले और न इसके बाद ही कभी ऐसी योजना बनाई गई। हम लोगो के वहाँ बैठने के कारण विद्यार्थियो से काफी अच्छे सम्बन्ध बन गये थे। नतीजा यह हुआ कि अधिष्ठाता कक्ष के अतिरिक्त भी अक्सर छात्राएँ विभाग मे आ जाती थी। वहॉ मेरे पास बैठने के लिए अलग कमरा नही था। स्टाफ रूम मे एक मेज और दो कुर्सियॉ मेरे हिस्से की थी किन्तु वहाँ का वातावरण न मुझे रास आता था और न मेरा वहाँ अधिक ठहरना कुछ ज्यादा समय अपनी विशिष्ट कोटि और प्रकार की सगति मे बैठने वाले एक दो अध्यापको को ही सुहाता था। अत मेरे निवेदन पर कुलपति जी ने प्रथम तल पर ही बरामदे के खाली पडे एक कोने को जो न बैठने का स्थान था और न ही उस जगह पर किसी दरवाजे का प्रवेश निकास ही था घेर कर एक कक्ष का रूप देने का आदेश कर दिया था। परिणामत यह अर्द्ध चन्द्राकार स्थान मेरा कमरा तो बन गया अध्यक्ष जी की अनुमति से मैंने इसमे स्टाफ रूम में पडी अपनी मेज और दो कुर्सियॉ भी डाल ली किन्तु इतने से काम नही चल रहा था। मैं दो चार कुर्सियाँ और डालना चाहती थी जिसके लिये कोई जुगाड नही लग रहा था। अचानक एक दिन एक कक्षा मे ही ढेर टूटे फर्नीचर पर नज़र पड़ी तो उसमे काफी सारी लूली लँगडी कुर्सियाँ भी नजर आई यानी जो हत्थे पाए पीठ या जालीविहीन थी। सबसे आसान काम बिना हत्थे वाली कुर्सियो का उपचार था। मैने निर्माण विभाग के एक बढई को व्यक्तिगत रूप से कुछ प्रलोभन देकर बुलाया और लगडी कुर्सियो के हत्थे निकाल कर लूली मात्र कुर्सियो मे ट्रान्सप्लान्ट करवा दिये। इस प्रकार छ कुर्सियों का जीर्णोद्धार हो गया। मेरे कमरे मे कुल कुर्सियो की सख्या आठ हो गई अर्थात कमरा फर्निश भी हो गया। बाकी साज सज्जा मैने अपने स्तर पर कर ली। उस कमरे का रूप विभाग के अन्य कमरो से कुछ ज्यादा अच्छा निखर आया। इस सरकारी रूप से

निर्मित कमरे के लिए डीन आफिस से एक ताला चाभी देने की रस्म भी अदा कर दी गई थी। मेरी अनुपस्थिति मे ताला जी बाकायदा दरवाजे की शोभा बढाने लगे।

कमरे को आबाद हुए कुछ माह भी न बीते थ कि एक दिन ताला खोलने पर देखा कमरे से पॉच कुर्सियॉ गायब मै अवाक । पहली मजिल से कुर्सियॉ कहॉ अन्तर्ध्यान हो गईं। विचित्र बात यह कि उस रात सुबह ३ ४ बजे तक समाजकार्य विभाग का दफ्तर खुला रहा था। अगले दिन सुबह दस बजे से वहॉ कोई सेमीनार था जिसके शोधपत्र साइक्लोस्टाइल हो रहे थे। मेरे कमरे से निकल कर जीना उतरने के लिए एकमात्र मार्ग समाजकार्य के इस दफ्तर के सामने से ही होकर था क्योकि यह दफ्तर जीने के पास पहला कमरा था। अब इस कक्ष मे समाजशास्त्र का विभागीय पुस्तकालय है। ऐसे मे मुझे यह निश्चय हो गया कि कुर्सियॉ या तो विभाग मे है या किसी कर्मचारी की ही नीयत का शिकार हुई है क्योकि उस रात किसी बाहर वाले के विभाग मे चोरी करने आने की सभावना शून्य थी। मेरे मन मे आशा की किरण जागी। मैने कुछ कमरो मे बहाने बहाने से जाकर नजर दौडाई पर अपनी कुर्सी दशन से वचित रही। निदान सरकारी कार्यवाही पूरी की। कुलानुशासक और तत्कालीन एक टेम्परेरी कुलपति को निष्फल निरर्थक लिखित सूचना देने की औपचारिकता पूरी की और इधर उधर इस का जिक्र करके मन हल्का करने लगी कितने जोड तोड से कमरा सजा पाई थी उफ !

सरकारी कार्यवाही न कुछ होनी थी न हुई कई दिन बीत गये। मै चुप हो गई पर विचलित रही। तब विभाग मे एक इकलौते चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी थे चपरासी के नाम पर। ये काफी चतुर और समझदार व्यक्ति है होमगार्ड से भी जुडे थे। मैने इन्हे भी पुरस्कार विधान से यत्किचित परिचित कराते हुए उन्हे अपने तरीके से कुर्सियॉ खोजने के लिये प्रेरित प्रोत्साहित किया साहस भी बॅधाया। चपरासी जी हत्थे चढ गये।

दो दिनो बाद वे शर्लक होम्स स्टाइल मे मेरे पास आकर फुसफुसाये साहब ! आपकी कुर्सियॉ एडल्ट एजूकेशन वाले कमरे मे है आप चलकर पहचान ले।

एडल्ट एजूकेशन इकाई तब नई नई खुली थी समाजकार्य विभाग के अधीन। वहॉ भी कुर्सियो की कमी थी। अन्दर जाकर देखा तो कई लूली या आधे पौने आसन युक्त कुर्सियो के बीच बीच मेरी कुर्सियॉ भी विराजमान थी। बाहर आकर समाजकार्य विभाग के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष से गुजारिश की कि मेरी कुर्सियॉ उस कमरे से निकलवा दे। वहॉ उस समय एडल्ट एजुकेशनाध्यक्ष भी मौजूद थे। वे पहले तो मेरी बात पर काफी टेढे बैंचे हुए परन्तु बाद मे जब मैने अपनी कुर्सियो की पुख्ता पहचान उन्हे दिखाकर अपने कमरे की बची एक उसी कोटि की कुर्सी से उन कुर्सियो का मिलान करवा दिया तो सीधे हो गये। वस्तुत इन छहो कुर्सियो के एक एक बदले हत्थे पर पालिश नही हुई थी और रदे के निशान नुमायॉ थे। इस प्रकार घर की कुर्सी घर को आई। इस सम्पूर्ण प्रकरण का समापन मेरे एक वाकपटु

और विनोदी सहयोगी श्री वी०के० सिह की टिप्पणी से हुआ जो आज तक अक्सर अकेले मे भी याद आने पर मन को गुदगुदा जाती है। बोले सर ! सुना है आपकी कुर्सियाँ सूडान पहुँच गई थी। असल मे एडल्ट एजुकेशनाध्यक्ष समाज कार्य के अध्यापक के अतिम नाम के हिज्जे अग्रेजी मे सूडान ही पढ़े जा सकते थे। चपरासी जी भी अपनी सफल जासूसी पर बडे गौरवान्वित रहे।

कुर्सियो का सूडान गमन ट्यूब बल्ब मेज कलमदान का अलोप हो जाना छात्रो की अनुशासन समस्या और फिर भी किसी की सीधी जवाबदेही की प्रश्नातीत सभावना जैसे तमाम ऐसे मुद्दे मुझे अपने अध्यक्षत्व को चलाने मे रोडे जान पड रहे थे। जे० के० इन्स्टीट्यूट आव सोशियालोजी एण्ड ह्यूमन रिलेशन्स के दो तल वाले भवन मे दोनो विभाग स्थित थे। मुझे ऐसा लगा कि यदि एक एक तल का दोनो विभाग अपना अलग अलग बँटवारा कर ले तो प्रशासन मे भी सुविधा रहेगी और जवाबदेही भी सीधी हो जायेगी। एक दो दिन तक मैंने इस विचार का मनन मथन किया। जब अपने आप मे इस विचार की सकारात्मकता के प्रति मैं पूर्ण रूप से आश्वस्त हो गई तो प्रोफेसर वर्मा से उनकी अनुमति लेने के आशय से जिक्र किया। मेरी आशा के विपरीत प्रोफेसर वर्मा एकाएक बहुत गम्भीर हो गये। मैं उनके चेहरे के भाव निहारती रही वर्मा जी कुछ बड़े व्यग्र भाव से मेरी ओर देख रहे थे।

कुलपति को लिखित आवेदन दे देते हैं' मैंने साहस बटोर कर चुप्पी तोड़ी।

आभा! लेट अस स्लीप ओवर दिस प्रोपोजल इट इज नाट वर्थ इट कम से कम अभी इतनी जल्दी सुन कर मैं सन्न रह गई। मेरा सारा सपना चूर हो गया। लेकिन उनकी बात का प्रतिवाद भी नही कर सकी। दो तीन दिन अदर ही अदर घुटती रही मथन करती रही। तभी एक वरिष्ठ आचार्य जी से भेट हो गई उन्होने पुन मेरा साहस बँधाने की कोशिश की।

इसी बीच एक और घटना घट गई। एक कक्षा मे किसी छात्रा या कुछ छात्राओ की बात को लेकर विद्यार्थियो मे झगडा हो गया। मै वहॉ पहुँची तो विद्यार्थियो ने कहा कि वे सोशलवर्क के विद्यार्थी हैं। सोशलवर्क के अध्यापक से वे अपने को समाजशास्त्र का विद्यार्थी पहले बता चुके थे तब मेरे पास सूचना आई थी। बाद मे पता चला कि वे कुछ कानून के विद्यार्थी काम रस से प्रेरित कला सकाय के विभाग मे पधारे थे। अब तो इस साझे मे मुझे प्रशासकीय कठिनाइयो के अन्य आयाम भी समझ मे आने लगे। अत मैंने उपरोक्त ज्येष्ठ अध्यापक से जो विश्वविद्यालय के तत्कालीन वरिष्ठतम प्रोफेसर भी थे और जिन्हे मैं तब अपना अति हितैषी मानती थी अपना विचार बताया। उन्होने न मेरी बात से तुरन्त शत प्रतिशत सहमति जताई बल्कि मेरे हिस्से के विभाग के कायाकल्प करवाने मे मुझे सक्रिय सहायता सहयोग देने का पूर्ण आश्वासन भी दे दिया। कुछ ट्रिक आव दि ट्रेड भी सुझा

दिय। मै और उत्साहित हो गई। मैने उन प्रोफेसर द्वारा दी जान वाली राय सहायता और अनुभव का पूर्ण लाभ उठाया और विघ्नहरण मगलकरण का ध्यान कर विभाग का प्रथम तल समाजशास्त्र के लिए विधिवत आबटित करवा लिया।

इस पूरे प्रकरण मे मुझे डॉ० वर्मा के कोप और तज्जन्यय बातचीत बद का भय गभीर रूप से सता रहा था। मै रोज डरते डरते उनके पास जाती कुछ क्षण बैठती और फिर बिना यह बात छेडे चली आती। मेरी स्थिति कुछ उस चोर जैसी हो गई थी जो हर समय अपनी चोरी पकडे जाने के डर से आशकित तो रहता है पर चोरी कबूल करने का साहस नही जुटा पाना है। मेरे इस असहज व्यवहार को प्रोफेसर वर्मा ने भॉप लिया। एक दिन एक पत्र आया डियर आभा कुड यू सी मी ? तो शायद वर्मा जी को पता लग गया है मैंने सोचा। चपरासी से कहलाया अभी आ रही हूँ लेकिन जाने के लिए जैसे हिम्मत नही पड रही थी। सोचा किसी और को साथ लेकर जाऊॅ फिर मन मे आया कि उनके गुस्से का रूप तो अप्रत्याशित ही है क्या पता किसके सामने क्या कह दे। अकेले मे ही डॉट खाना ठीक रहेगा फिर सोचा यदि न मिलूॅ तो क्या होगा और बस इसी विचार ने मुझे वह सबल दिया कि मैंने उसी समय मिलने का मन बना लिया। जो कुछ मैंने किया है वह जान बूझ कर किया है। उसमे शत प्रतिशत आज्ञा उल्लघन है और उसका दण्ड मुझे मिलना ही चाहिये। रही बात मेरे तर्को की सार्थकता की तो भविष्य मे उसका सुफल तो मेरा प्राप्य होगा ही। दण्ड की स्वीकृति के लिए सन्नद्ध अपराधी के रूप मे मैं वर्मा जी के सामने उपस्थित हुई।

जी सर। आपकी तबियत कैसी है। मैने हमेशा वाला प्रश्न पूछा।

मेरी तबियत तो ठीक है पर मुझे लगता है तुम आजकल कुछ बहुत अपसेट हो क्या बात है ? प्रोफेसर वर्मा ने नितान्त सहज रूप से पूछा।

मेरा ऊहापोह बढता जा रहा था मेरा ना नुकुर उन्हे सतुष्ट नही कर पा रहा था। कुछ देर की प्रश्नोत्तरी के बाद मुझे लगा कि उनकी वास्तविक चिन्ता इस आशका मे थी कि छात्र अध्यापक स्तर पर तो कुछ अप्रिय घटित नही हो गया है और यदि हुआ भी है तो मुझे इसे इतनी गभीरता से नही लेना चाहिये नाट टु माई हार्ट यह सब तो सामान्य है इसका आभास उन्होने मुझे पहले ही दिन गुलाब की कली के माध्यम से करा दिया था। वर्मा जी की बातो मे सान्त्वना का स्वर था।

अब मेरा मन रोने रोने को हो रहा था 'सर आपने उस दिन मुझे मना कर दिया था फिर भी मैने विभाग की बिल्डिग के बॅटवारे के लिए इनीशियेट कर दिया। सर। मै आपको बताना चाहती थी पर लगा कि आप गुस्सा होगे। सर। गल्ती तो मैने की है लेकिन ऐसा है मेरी बात बीच मे प्रोफेसर वर्मा ने काट दी। हँसते हुए बोले यह तो उन्हे पहले ही दूसरे पक्ष से पता चल गया था। पर ठीक है। उन्होने मुझे मना करके अपना फर्ज पूरा कर दिया था जिसे उन्होने दूसरे पक्ष को भी स्पष्ट कर दिया। अब विभाग मुझे चलाना है। मुझे

अपने ढग से प्रशासन करना चाहिये। इसमे उनकी नाराजगी का प्रश्न कहाँ उठता है। सारी बात उन्होने बिना रुके मुझे बता डाली। मै दुबारा स्तब्ध थी और कितना हल्का अनुभव कर रही थी बता नही सकती। लगा मेरे सर से मनो का बोझ उतर गया।

उसके बाद जब जब प्रसग आया होगा अनगिनत बार प्रोफेसर वर्मा ने मेरे भवन के बॅटवारा करवाने के निर्णय की और भवन के विषय मे दूसरो से सुने गये रखरखाव की सराहना की होगी ऊपरी मजिल पर वे स्वय तो कभी आ ही नही सके। इस पूरे वृत्तान्त का मेरे लिए एक सकारात्मक पक्ष यह रहा कि मै उसके बाद भी कितने ही कामो के विषय मे डॉ० वर्मा का परामर्श लेने मे हिचकती नही थी। उन्होने कभी मेरा हौसला तोडा नही था।

मुझे अपने द्वारा विभागीय भवन के कराये गये बॅटवारे से पूर्ण सतोष रहा है। अन्यथा दूसरे पक्ष की साम्राज्यवादी प्रवृत्तियो के चलते विभाग मे कुछ भी सकारात्मक करना सभव नही हो पाता। हर दिन मै चौकीदारी रखवाली मे ही लगी रह जाती। वैसे सराहना तो इस कार्य की मेरे घोर आलोचक और विरोधी भी करने को बाध्य हुए।

प्रोफेसर वर्मा के विलक्षण गुस्से की एक और घटना भी बडी रोचक है। तब मैं प्रोफेसर नही थी। मुझे याद नही वे किस बात पर मुझसे गुस्सा हो गये थे और उन्होने यथावत मुझसे बोलना बद कर दिया था। एक दिन वे अपने कमरे मे बैठे थे। मेरी कक्षा शुरू होने मे २० मिनट शेष थे।

अदर आ जायॅ सर! कहते हुए मै उनके कमरे मे घुस गई।

उन्होने सिर उठाया कहिये मैं बिना कहे कुर्सी पर बैठ गइ।

ह्वाट ब्राट यू हियर ?

नथिग ! मेरे क्लास मे अभी १५ २० मिनट थे मैंने कहा आपसे नमस्ते कर ले।

वे कुछ लिखने लगे शायद यो ही मुझे नजरन्दाज करने के लिए। १० मिनट बैठ कर मैंने नमस्ते किया और चली आई। दो तीन दिन बाद मुझे फिर वैसा ही एक मौका मिला और मैं उनके कमरे मे प्रविष्ट हुई। स्थिति फिर पूर्ववत ही थी। परन्तु आज मेरे पास वहॉ बैठने के लिए समय अधिक था। उनकी मेज पर एक पुस्तक The Essential Left रखी थी। मैंने उसे उठा लिया।

वर्मा जी ने देखा दैट इज बियान्ड यू।

आई नो। और मै पुस्तक के पन्ने पलटने लगी।

प्रोफेसर वर्मा जी कोई जर्नल देख रहे थे। वे उसमे और अधिक तल्लीन हो गये। कुछ देर ऐसे ही रहा। उसके बाद उन्होने कहा कि वह पुस्तक मैं अपने साथ ले जाऊॅ।

जब यह मुझे समझ मे ही नही आयेगी तो मैं इसे क्यो ले जाऊँ मेरा तर्क था।

क्योकि मै कह रहा हूँ डॉ० वर्मा के उत्तर मे आदेश का तेवर था।

बिना ना नुकर किये मैने किताब ले ली। दो दिनो बाद जब वह किताब मै उन्हे वापस करने गई तो डॉ० वर्मा जी ने मुझे सदा के लिए वह पुस्तक दे दी। आज भी मेरी शेल्फ पर वह डॉ० वर्मा की स्मृति चिह्न सी सुरक्षित है।

प्रोफेसर वर्मा के अवकाश ग्रहण करने के बाद विभाग मे होने वाले कार्यक्रमो का निमत्रण पत्र लेकर मैं दो बार उन्हे आमन्त्रित करने गई थी यह जानते हुए भी कि वे आ न सकेगे। दूसरी बार उन्होने कहा कि तुम स्वय कार्ड देने न आया करो। मै आ तो सकता नही हूँ।

मैंने कहा मै तो आशीर्वाद लेने आती हूँ।

डॉक्टर साहब बोले आशीर्वाद मै इन एब्सेशिया पोस्ट कर दूँगा। तुम फक्शन के बाद आया करो इत्मीनान से तब पूरा हाल सुन कर मुझे ज्यादा अच्छा लगेगा।

तब से यही नियम बन गया था। मेरे जाने पर वे कार्यक्रमो के विषय मे छपी अखबारो की खबरो का हवाला देते। मुझसे पूरी रिपोर्ट लेते और ब्याज से मेरी प्रशसा करते हुए अपने किये हुए सही चयन यानी मेरी नियुक्ति पर प्रसन्नता व्यक्त करते। मेरी कभी भी किसी विभागेतर या बाहरी कार्यक्रमो म सहभागिता का समाचार पढ सुनकर भी वे बडे खुश होते। एक बार प्रोफेसर डी पी मुकर्जी के जन्मशती समारोह मे बगाली क्लब मे मेरे सभाषण की उन्होने बडी प्रशसा की थी। उनका मानना था कि यह लखनऊ के समाजशास्त्र विभाग की परम्परा का परिचायक है। विभाग और मरे दोनो के लिए उन्होने भरपूर दुआएँ दी थी। उनका एक पत्र मै यहाँ यथावत उदधृत कर रही हूँ।

प्रिय आभा

कैसी हो ? तुम्हारे नये वर्ष की शुभकामनाएँ और सुन्दर उपहार पाकर बहुत खुशी हुई क्योकि हमे इन शुभकामनाओ की बहुत जरूरत भी है। बडी कठिनाई से तुम्हारे उपहार को काकी से बचा कर रखा है।

तुम उस दिन घर आई। बहुत अच्छा लगा। तुम जब भी आती हो बहुत अच्छा लगता है– मुझे ही नहीं घर मे सबको। क्योकि तुम औपचारिकतावश नही आती हो। मैने तो पहले भी कभी औपचारिकता नही महसूस की सो अब कैसी औपचारिकता ?

अखबार देखा ! अपने विभाग की तारीफ पढ कर बहुत खुशी हुई। और इस सबध मे तुम्हारी तारीफ पढ़ कर तो और ज्यादा खुशी हुई। बस जुटी रहो इसी तरह विभाग तथा विषय को उठाने आगे बढाने मे। और आभा वह सफर ही क्या जिसमे कुछ अडचने न आएँ।

काकी पूछ रही है बाबा क्या लिख रहे हो ? मैने उत्तर दिया चिट्ठी तो पूछा

क्या लिखे हो किस को लिखे क्यो लिखा ? ये बच्चे और इनके सवाल !

आशा है पूज्य माँ जी ठीक हो रही होगी। और तुम्हारी गर्दन की तकलीफ भी कम हो रही होगी।

हम सबकी ओर से सस्नेह

मेरे अध्यक्ष होने के तुरन्त बाद ही समाजशास्त्र विभाग जे०के० भवन के प्रथम तल पर सिमट गया था। मैने भरसक उसका कायाकल्प करने की कोशिश की थी। डी०पी० मुकर्जी व्याख्यान कक्ष का निर्माण और साज सज्जा भी मेरे प्रयासो से साकार हुई थी। उन्हे इस पूरे कार्यकलाप की सूचना अन्य लोगो से मिलती रहती थी लेकिन वे स्वय कभी ऊपर आ नही सके थे। जब भी कभी विभाग की सुन्दरता और रखरखाव की चर्चा होती वे हर बार यही कहते कि बिल्कुल ऊपर जाने से पहले एक बार वे विभाग मे जरूर आयेगे उनका ऊपर वाले मे विश्वास नही था वे ऊपर नही आये और अचानक ऊपर चले गये।

मुझे यह कसक हमेशा बनी रहेगी।

प्रोफेसर ए०आर० देसाई

पुस्तको से परिचित और विचार विमश मे चर्चित प्रोफेसर ए०आर० देसाइ का मेरा प्रथम साक्षात कानपुर विश्वविद्यालय मे उत्तर प्रदेश समाजशास्त्रीय सम्मेलन मे हुआ था। प्रोफेसर देसाई ने उस अधिवेशन मे उदघाटन भाषण दिया था। उनका अग्रेजी मे छपा हुआ उदघाटन भाषण वितरित किया गया था। किन्तु उन्होने अग्रेजी मे सम्भाषण से पूर्व अपनी हिन्दी ज्ञान विषयक सीमाओ का जिक्र करते हुए कहा था मुझे अच्छी हिन्दी नही आती है। इसलिए मैने अपने विचार अग्रेजी मे व्यक्त किये है। यद्यपि यहॉ पर अन्य लोगो की हिन्दी सुनकर मुझे हिन्दी बोलने का कुछ साहस जुट जरूर गया है। सम्मेलन की शेष सम्पूर्ण कार्यवाही हिन्दी मे सम्पन्न हो रही थी। वयोवृद्ध विद्वान देसाई जी की सादगी और वक्तृता दोनो ने ही मेरे मन पर एक छाप छोड दी थी।

उसके कई वर्ष बाद मद्रास मे एक अन्तर्राष्ट्रीय गोल मेज सम्मेलन मे पुन प्रोफेसर देसाई के दर्शन हुए। यह राजनीतिशास्त्र का सम्मेलन था। शायद १६ १७ विदेशी प्रतिनिधि और प्राय इसके दो गुने स्वदेशी सहभागी वहॉ आये थे दो तीन समाजशास्त्री भी थे। वहॉ मेरी देसाई जी से कुछ विस्तृत भेट हुई। सत्रो के दौरान वयोवृद्ध देसाई का उत्साह ऊर्जा और ओज उन्हे जैसे एक बदले हुए व्यक्तित्व का स्वामी बना देते थे। सत्रो के बाद भोजन आदि के बीच वे बिल्कुल भिन्न दिखाई पडते और लोगो से घिरे हुए उनकी शकाओ पर सभी के साथ समान रूप से अन्तर्क्रिया करते। उस दौरान किसी को कोई विशेष दर्जा उनके वार्तालाप मे प्राप्त नही था। इस सामूहिक वार्तालाप का चरित्र साम्यवादी ही लगता था मुझे। किसी के प्रति विशेष ध्यानाकर्षण का भाव वहॉ नही रहता था। सभी अपनी अपनी ओर डॉ० देसाई को आकर्षित करने मे सफल हो जाते थे। मेरा भी कोई तीर इसी दौरान निशाने पर लग गया था और मेरी ओर डॉ० देसाई सहज ही आकर्षित हो गये थे चार पॉच मिनट तक वे मेरी शका का समाधान करते रहे थे।

डॉ० देसाई भी मद्रास विश्वविद्यालय के अतिथि गृह मे ठहरे थे। सत्र समाप्त होने के बाद उस दिन हम (मै और पूना मे कार्यरत एक अन्य सहभागी) डॉ० देसाई के साथ एक ही गाडी मे अतिथि गृह वापस आये। गेस्ट हाउस के काउन्टर पर चाभी लेते लेते डॉ० देसाई ने हम लोगो से उनके कमरे मे चलने को कहा। उनके साथ कुछ क्षण और बिताने बतियाने का लालच हम लोगो के मन मे था ही फौरन आदेश का पालन करके उनके साथ

हो लिये। मैने उनके हाथ से चाभी ले ली और उनका ताला खोल कर उनसे अन्दर चलने का निवेदन किया। पीछे पीछे हम दोनो भी कमरे मे घुसे। मेज पर ढेर सारी किताबे रखी थी। कुछ किताबे आलमारी मे भी भरी थी। 'तीन दिनो के अधिवेशन के लिए इतनी पुस्तके लाद कर लाये है प्रोफेसर देसाई पूना वाली मित्र फुसफुसाई। मैने भी सकेत से आश्चर्य व्यक्त किया। तभी प्रोफेसर देसाई सुस्थिर होकर मुझे कुछ पुस्तके दिखाने लगे। इनमे से कुछेक प्रकाशन उत्तर कोरियाई थे जिनमे अधिकाशत उस समय के वहॉ के ग्रेट लीडर किम इल सुग की जीवनी या विचारावली से सबधित थे। वे सभी छोटी छोटी किताबे मेरे पास भी थी कोरिया भ्रमण के एक शिष्टमडल का मैने नेतृत्व किया था और तभी वे पुस्तके मुझे भेट की जा चुकी थी।

जूचे दर्शन और किम इल सुग दो ही मूल तत्त्व इन पुस्तको का सार है। मैने धीरे से डॉ० देसाई को उक्त जानकारी दे दी।

उसके बाद वे मुझे कुछ अन्य साम्यवादी प्रचार सामग्री दना चाह रहे थे कि मैने कुछ विनम्रता के साथ थोडा लाड सा जताते हुए कहा मेरी मार्क्सवाद मे कुछ बहुत रुचि ही नही है। और फिर अपने ही दु साहस से डर कर मैंने अपनी जीभ काट ली थी।

प्रोफेसर देसाई की सहजता और दृढता मे कतई कोई अतर नही आया। वे मेरी बात से न विचलित हुये और न किंचित प्रभावित। उसी स्वर मे अपनी बात को आगे बढाते हुए बोले

ठीक है ठीक है इट इज नो कम्पल्शन। आई फाउण्ड इट ए मोर फ्रूटफुल वे ऑफ सोशल इन्क्वायरी सो आई डिड विद इट। दैटस ऑल। ओर यह कह कर उन्होने वे मुद्रित प्रकाशित कागज मुझे पकडा दिये और पुन मेरी रुचि के क्षेत्र म भी उसी सहजता से वे प्रवेश कर गये।

उन्होने महिला अध्ययन विषयक अपने अध्ययनो के विषय मे बताया। सोशियालोजी ऑफ ठुमरी और सोशियोलोजी आव तबला पर बात की। महफिलो से लेकर महोत्सवो और मदिरो से लेकर होटलो तक की सगीत नृत्य की यात्रा को मुझस बडी दिलचस्पी से सुना और फिर चलते चलते एक बार फिर अपने दिये गये साहित्य को पढकर देखने की बात दुहराना वे नही भूले।

उनके कमरे से निकल कर हम अपने कमरे मे आ गये। हम दोनो उनकी अपनी वैचारिकी के लिए प्रतिबद्धता और उनकी ज्ञान की विशालता की चर्चा बहुत देर तक करते रहे थे। इस अधिवेशन के अतिम दिन तक मै प्रोफेसर देसाई से खूब बातचीत करने लगी थी या यो कहे कि मुझे कई बार उसने वार्तालाप का मौका मिल गया था।

उनकी सादगी और उनका बड़प्पन दोनो ही मेरे मन मे उतर गये थे। मैने मद्रास से

चलने से पहले उनसे भविष्य मे कभी लखनऊ आने का आग्रह किया। उनकी अस्वीकृति न्ही है ऐसा मान कर मैंने शीघ्रातिशीघ्र कोई विधान बनाने का अपना सकल्प उन्हे व्यक्त कर दिया। लखनऊ का जिक्र आने पर उन्होने लखनऊ और लखनऊ वाला से जुडी बहुत सी यादे बाते मुझे वही बताई। बातो का वह लम्बा सिलसिला बडा ही रोचक था। बाद मे उन्होने मुझे एक प्रकार से आश्वस्त कर दिया था कि वे मेरे आमत्रण को मना नही करेगे।

प्रोफेसर देसाई को लखनऊ विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग के तत्त्वावधान मे किसी कार्यक्रम मे बुलाने के लिए उपयुक्त अवसर जुटाने मे मुझे एक वर्ष से अधिक का समय लग गया। अतत जो कार्यक्रम बना वह खासा महत्त्वपूर्ण था। मैंने प्रोफेसर देसाई को प्रोफेसर डी०पी० मुकर्जी स्मृति व्याख्यान देने के लिए आमत्रित किया।

प्रोफेसर डी०पी० मुकर्जी एन्डाउमेन्ट लेक्चर का भी विलक्षण इतिहास था। प्रोफेसर मुकर्जी ने विश्वविद्यालय के जन्म के साथ ही जन्मे अर्थशास्त्र एव समाज शास्त्र विभाग मे प्रवक्ता पद पर अध्ययन करना शुरू किया था और फिर इसी विभाग मे आचार्य अध्यक्ष हुए। १९५४ तक वे यही रहे। कालान्तर मे प्रोफेसर बलजीत सिह स्वतत्र अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष हुए। समाजशास्त्र विभाग उससे प्रथक हो गया था। डॉ० सिह ने कुछ कोष जमा करके १९७६ मे डी०पी० मुकर्जी इन्डाउमेन्ट लेक्चरशिप की स्थापना की थी। इसके तत्त्वावधान मे पहला व्याख्यान डॉ० टी० एन० मदन ने जो कि प्रोफेसर मुकर्जी के अति प्रिय शिष्य रहे थे दिया था। प्रोफेसर मदन ने अति श्रद्धापूर्वक यह व्याख्यान अपने गुरुवर प्रोफेसर मुकर्जी को समर्पित किया था तथा एक हजार रुपये का मानदेय भी विश्वविद्यालय को इस आशय से दान कर दिया था कि यह धन सर्वोत्तम ब्याज दर पर जमा कर दिया जाय। समाजशास्त्र मे एम०ए० प्रथम वर्ष मे सर्वाधिक अक पाने वाले विद्यार्थी को इस एक हजार रुपये के ब्याज जो कि १००/ होता था नकद इनाम रूप मे दे दिया जाये। दुर्योग से डॉ० बलजीत सिह का असामयिक निधन हो गया उनके सहयोगी डॉ० वीर बहादुर सिह भी अकस्मात चल बसे। फलत व्याख्यान विषयक फाइल मेजो से दराजो मे होती हुई दाखिल दफ्तर हो गई। वर्षो पर वर्ष बीत गये। विभागाध्यक्ष भी अदलते बदलते गये किन्तु पूरे प्रकरण मे इस व्याख्यानमाला की किसी को सुध न आई।

सन ९० मे मै समाजशास्त्र की विभागाध्यक्ष हुई और सन ९१ मे मैंने किसी कार्यक्रम मे प्रोफेसर टी० एन० मदन को विभाग मे आमत्रित किया। प्रोफेसर मदन ने डी०पी० मुकर्जी व्याख्यान के विषय मे मुझे उपर्युक्त जानकारी दी और यह आग्रह किया कि मै इस व्याख्यान को पुनर्जीवित करवाने का यत्न करूँ। मैने उनके लखनऊ मे रहते रहते यह फाइल ढुँढवाने की चेष्टा की पर कुछ पता नही लगा। उस समय सयोग से मेरे पूज्य पिताजी लखनऊ विश्वविद्यालय के कुलपति हो मये थे। लेकिन मेरा यह साहस नही था कि मैं उनसे फाइल खोजवाने का आग्रह कर पाती। अत मैने प्रोफेसर मदन से यह अनुरोध

किया कि वे ही कुलपति से मिलकर उनसे इस विषय मे बात कर ले। इस प्रकार मेरा आशय इस प्रकरण को पूर्ण औपचारिक बना देना था जिसमे हमे सफलता मिली।

कुलपति जी के आदेश का गभीरतापूर्वक पालन हुआ। फाइल अर्थशास्त्र विभाग अधिष्ठाता कला सकाय के कार्यालयो (क्योकि डॉ० बलजीत सिह डीन भी थे) से होती हुई कुल सचिव कार्यालय के अगाध सागर मे समाधिस्थ हो चुकी थी। जबरदस्त गोताखोरी के बाद उसे तलाशा जा सका। सभी नियमो परिनियमो सहित फाइल मिली। उसका सूक्ष्म अध्ययन किया गया। अब एक और समस्या उत्पन्न हो गई। डॉ० सिह ने जिन अध्यादेशो के तहत इस व्याख्यानमाला को बाँधा था उसके चलते इसे अर्थशास्त्र विभाग के तत्त्वावधान मे ही सम्पन्न किया जा सकता था उससे बाहर निकालना तब तक सभव नही था जब तक कि अध्यादेश ही न बदल दिये जाये। अब यदि मैं इसे पुनर्जीवित करवाने का यत्न करती तो व्याख्यानमाला पर अधिकार तो अर्थशास्त्र विभाग का ही रहता। आसमान से गिरे खजूर पर अटके वाली स्थिति हो गई। मैंने बहुत सोचा फिर मै अर्थशास्त्र के तत्कालीन अध्यक्ष प्रोफेसर बनर्जी के पास गई। मैंने उन्हे पूरी कथा सुनाई। वे भी इस पूरे प्रसग से अनभिज्ञ थे। मैंने उनके सामने एक प्रस्ताव रखा कि इस व्याख्यानमाला पर अधिकार तो अर्थशास्त्र विभाग का ही है इसमे कोई सशय नही है लेकिन डी०पी० साहब पर हमारा भी आधा अधिकार है वे समाजशास्त्र के भी थे। अत यदि हम लोग अधिष्ठाता कला सकाय के जो कि उस समिति के पदेन अध्यक्ष थे माध्यम से एक समिति पुन गठित कर ले और उसमे इस आशय के अध्यादेश पारित करवा ले कि इस व्याख्यान को सपन्न करवाने का समाजशास्त्र एव अर्थशास्त्र विभाग को सयुक्त दायित्व दे दिया जाये तो बारी बारी से दोनो विभाग एक एक वर्ष के अतर से यह व्याख्यान आयोजित कर सकेगे। मैंने कहा कि इसमे मेरी सदाशयता यह है कि फिर इस व्याख्यानमाला के अवरुद्ध होने की सभावना पचास प्रतिशत कम हो जायेगी। प्रोफेसर बनजी को भी अकेले इसे सचालित कर पाने मे कुछ व्यावहारिक कठिनाई समझ मे आ रही थी। इसलिए उन्होन मेरे प्रस्ताव को मानने मे कोई आपत्ति नही जताई। निदान पुन एक समिति बनी और अधिष्ठाता कला सकाय की अध्यक्षता मे नवीन अध्यादेश पारित हुए। सन ९२ के प्रारम्भ मे यह तय हो गया कि अब से प्रतिवर्ष यह व्याख्यान सम्पन्न करवाये जायेगे। सन ९२ का वर्ष समाज शास्त्र विभाग के हिस्से मे आया। इस पूरी प्रक्रिया मे मैंने मानदेय भी रु १०००/ से बढ़वाकर रु २०००/ करवा लिया था। प्रोफेसर देसाई को निमत्रित करने का मुझे इससे अच्छा अवसर नही मिल सकता था।

उपरोक्त निर्णय होते ही मैंने प्रोफेसर देसाई को इस व्याख्यानमाला के लिए आमत्रित करते हुए पत्र लिखा। प्रोफेसर डी०पी० मुकर्जी प्रोफेसर देसाई के सम्मानपात्र तो थे ही मित्र भी रहे थे और उनकी कुछ स्मृतियॉ वे मुझे मद्रास मे सुना चुके थे। उन सबका हवाला भी मैंने पत्र मे दिया और उनके लखनऊ आने के लिए मुझे दिये गये आश्वासन की

याद दिलाई। मेरी खुशी की सीमा नही रही जब शीघ्र ही मुझे प्रोफेसर देसाई का स्वीकृति पत्र मिला। बहरहाल सभी कुछ बडी सुविधापूर्वक सुनिश्चित हो गया। किसी अन्य माध्यम से हवाई यात्रा का जुगाड हो गया। अति विशेष अतिथि गृह की व्यवस्था हो गयी। इस प्रकार नियत तिथि समय पर प्रोफेसर देसाई का लखनऊ मे पदार्पण हुआ।

प्रोफसर ए०आर० देसाई की यह अनिम लखनऊ यात्रा थी और मेरी उनसे आखिरी बार भेट। मेरे अनुनय पर वे ढाई दिनो के लिए लखनऊ आये थे। लखनऊ मे उनके साथ के ये ढाई दिन कितने सार्थक और सॅजोने योग्य थे इसे केवल महसूस किया जा सकता है। हम लोगो ने उनके एकाधिक कार्यक्रम लगा रखे थे। डी०पी० मुकर्जी व्याख्यानमाला मे उनका सम्भाषण Empowering the sovereign Citizens of India Some Constitutional Obstacles विषय पर था। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रोफेसर टी०एन० मदन ने ही की थी। मच पर दोनो की उपस्थिति डी०पी० साहब के प्रति दोनो के सस्मरण और प्रोफेसर देसाई का गभीर भाषण समाजशास्त्र के डी०पी० मुकर्जी प्रेक्षागार मे सम्पन्न एक अविस्मरणीय आयोजन था। उसके बाद उस समय विभाग मे चल रहे एक रिफ्रेशर कोर्स मे डॉ० देसाई का भाषण और समापन रूप मे विभाग के विद्यार्थियो के साथ डॉ० देसाई की अतरग और बेबाक बातचीत। कुछ मिलाकर विभाग मे इन दिनो मे एक उत्सव का सा वातावरण बना रहा। हमारे गुरु प्रोफेसर ए०के० सरन के बडे भाई का तभी निधन हो गया था। वे इस बात से सतोष कर रहे थे कि उनकी तेरहवी नही हुई अत वे कही भोजन आदि नही करेगे पर दसवॉ हो चुका होने के कारण कम से कम व्याख्यान के दिन वहॉ आने की स्थिति मे तो वे थे अन्यथा डॉ० देसाई को वे न सुन पाते न उनसे मिल ही पाते।

प्रोफेसर सरन के गुरु प्रोफेसर एम०डी० जोशी (पूर्व विभागाध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग ल०वि०वि०) भी पधारे थे। कितने ही अन्य विद्वतगण आचार्य इन कार्यक्रमो मे आये। विद्यार्थियो का तोष और आह्लाद तो अपरिमित था। केवल पढी या सुनी जाने वाली गथाओ जैसे प्रोफेसर देसाई को न केवल उन्होने प्रत्यक्ष देखा था बल्कि वे उनके साथ चर्चा मे भी शामिल हो रहे थे।

लखनऊ आगमन के दूसरे दिन की सन्ध्या मैने उनके व्यक्तिगत कार्यक्रम के लिए रखी थी। जब यह उन्हे बताया तो वे कुछ गभीर हो गये। कुछ सोच कर कहा कि लखनऊ वे कई दशाब्दियो के बाद आये है। एक बार पुराने और नये लखनऊ का भ्रमण करते हुए उसके बदले रूप को देखना चाहते है। अपने साथ कुछ' ले जाने के नाम पर उन्हे सिर्फ लखनऊ की गुलाब रेवडी की याद आ रही थी। उन्होने यह भी कहा कि यह लखनऊ भ्रमण वे बिल्कुल अनौपचारिक रूप से करना चाहते है। मैने उन्हे आश्वस्त किया कि अपनी गाडी मे ही हम लोग जायेगे और मै स्वय गाडी ड्राइव करूँगी।

भोजन के बाद कुछ देर उन्होने विश्राम किया। शाम को मै और मेरी एक सहेली डॉ० कुमकुम श्रीवास्तव (प्रवक्ता शिक्षाशास्त्र विभाग) उनके कमरे मे पहुँचे। वे कुर्ता पैजामा पहने बैठे थे।

मैने कहा आप तैयार हो जाये हम लोग बाहर प्रतीक्षा कर रहे है।

डॉ० देसाई ने मुझे विस्मय से देखा। मै तो तैयार ही हूँ क्या इससे ज्यादा तैयार होना पडेगा । मैं कुछ सकपका गई। वे बोले मैने कहा था न कि मै इनफार्मली चलना चाहता हूँ। हम लोग हँस पडे।

बाहर निकले तो थोडी देर मे सूर्य अस्त होने वाला था। मैने कहा चलिये पहले पुराने लखनऊ की ओर चलते है। वहाँ से अभी शामे अवध का नजारा भी दिख जायेगा फिर उधर से लौटकर हजरतगज आयेगे तब इधर की जगमगाहट देख लेगे।

हनुमान सेतु से नदी पार करते हुए सुभाष चौक से हम छतर मजिल के सामने से होते हुए रिवर बैक रोड पर शहीद स्मारक रेजीडेन्सी बडा इमामबाड़ा छोटा इमामबाडा और फिर शामे अवध की झलक देखकर नीबू पार्क बुद्ध पार्क हाथी पार्क आदि की कमट्री देती हुई मै उन्हे वापस ला रही थी। इस बीच मैने रिवर बैक रोड का कइ बार नाम लिया।

एकाएक प्रोफेसर देसाई बोले यू आर टेलिग मी रिवर बैक रोड रिवर बैक रोड बट ह्वेयर इज दि रिवर ?

मुझे अपनी गलती का एहसास हुआ। नदी के दोनो ओर तो बाँध बना है नदी सडक से द्रष्टव्य ही नही है। मैने शहीद स्मारक पर आकर गाडी रोक दी।

नदी देखने के लिए सर ! हमे ऊपर चलना पडेगा। डॉ० देसाई हमसे आगे आगे सीढियाँ चढ़ने लगे। ऊपर पहुँचते ही वे बडे पुलकित हुये। मैंने उन्हे शहीद स्मारक शहीद दिवस सामने तैरती नावे और नौका विहार आदि विषयक अपने ज्ञान का फिर कुछ परिचय देना चाहा किन्तु उनकी रुचि कही और थी।

बोले क्या हम बोटिग कर सकते है।

श्योर मै चहकी और हम तीनो नीचे नदी तट पर उतर कर नाव पर सवार हो गये।

डॉ० देसाई का प्रसन्न चेहरा मेरी प्रसन्नता का विषय तो था ही मेरे गर्व का बायस भी कम नही था। नाव बह चली नाव वाले ने पूरे स्वर मे ट्रान्जिस्टर खोल दिया सावन का महीना पवन करे सोर वह पतवार के साथ लहरो से खेलने लगा। कुछ क्षण हमने मौन नौका विहार का आनन्द लिया।

प्रोफेसर देसाई ने नाव वाले को सबोधित किया इसको बद कर दो। इतना रोमास नही चाहिये।

हम और कुमकुम उठकर हँस पड़। डॉ० देसाई का मार्क्सवाद फिर उनके ऊपर छा गया था। वे नाव वाले से पूर्णतया मुखातिब थे। कुल कितनी नावे है यहाँ ? नावो का मालिक कौन है ? उसे कितना किराया देते हो ? तुम कितने राउन्ड करते हो दिन मे ? एक राउन्ड मे कितना मिलता है ? नये शादी शुदा जाडे ता ज्यादा पैसे देते हागे ? किस मासम मे ज्यादा कमाइ होती है ? औसतन कितना कमा लेते हा ? बाल बच्चो के बारे मे क्या साचा है ? आदि।

इस दारान नाव मे हमारी और कुकुम की उपस्थिति के प्रति वे बिल्कुल उदासीन थे। मुझे पूर्ण आशा थी कि वे अपने मस्तिष्क मे सारा डेटा उतार रहे होगे। आधे घण्टे की नौका विहार का भी यह अपूर्व अनुपम अनुभव था। तैराई और बोटिंग मुझे अति प्रिय है। लखनऊ नैनीताल और विदेश मे भी कितनी बार बोटिंग की होगी पर ऐसा सान्निध्य और ऐसी सवेदना मेरी एक अनूठी अनमोल अनुभूति थी। आज भी उसका स्मरण जाने अनजाने किसी प्रेरणा का सचार कर जाता है। लौटकर हजरतगज घूमघाम कर हम वापस आ गये। प्रोफेसर देसाइ अपने देखे हुए लखनऊ की इस लखनऊ से और अपने नगर बम्बई से इसकी तुलना करते रहे। लेकिन एक बार भी उन्होने अतीत की याद करके आह नही भरी। परिवर्तित रूप को भी वे उतने ही नैसर्गिक भाव से स्वीकार कर रहे थे।

अगले दिन उन्हे बम्बई वापस जाना था। हम उन्हे हवाई अड्डा छोडने गये। यही मेरे लिए उनके अतिम दशन थे ढेर सारे आशीवाद भविष्य के लिए शुभकामनाएँ विभाग के लिए आशाये और शीघ्रातिशीघ्र पकाशन हेतु शोध पत्र भेजने का सटीक आश्वासन। अन्तत मेरे द्वारा हाथ जोडकर उन्हे प्रस्थान कक्ष म प्रवेश करते देखना। ब्रीफकेस उन्होने चेक इन कर दिया था एक छोटा सा कपडे का थैला कधे पर डाले वे सधे कदमो से चले गए थे।

उनके जाने के बाद हम लखनऊ वालो का हैग ओवर उतर भी नही पाया कि प्रोफेसर देसाई का पत्र आया। लम्बा पत्र एक एक शब्द प्रोफेसर देसाई जी के मनोभावो और सुखद अनुभूतियो से भीगा हुआ। उनके निधन के बाद श्रीमती देसाई का पत्र भी आया था जिसमे उन्होने डॉ देसाइ की लखनऊ यात्रा की सुखद यादो के विषय मे लिखा था।

मुझे अपने आयोजन पर सतोष हुआ। कुछ दिनो बाद उन्होने सस्मरण सहित अपना लेख भी भेज दिया और लेख के कुछ दिन बाद ही एक और पत्र आया यदि मैं प्रकाशन मे असमर्थ हूँ तो वे उसे कही और छपा लेगे। उनसे समय की छूट मैने अवश्य माँगी किन्तु छपने मे कोई सशय नही है इसके प्रति मैंने उन्हे आश्वस्त कर दिया था। बाद मे डी०पी० मुकर्जी की जन्म शताब्दी के अवसर पर मेरे द्वारा सपादित स्मृति ग्रथ Social and Cultural Diversities D P Mukerji in Memoriam का प्रकाशन हुआ और उसमे पहला लेख Empowering the Sovereign Citizens of India Some Constitutional Obstacles प्रोफेसर देसाई का ही छपा उनके सस्मरणो सहित।

बड़े उस्ताद साहब

उस्ताद यूसुफ़ अली खाँ से सितार सीखने का मेरा सुयोग नाम मात्र का ही रहा। वे हमारे उस्ताद इलियास खाँ साहब के उस्ताद थे। इसी नाते हम सब उन्हे बडे उस्ताद साहब कहते थे। हमारे उस्ताद जब हमे सिखाते होते उस्ताद यूसुफ अली खाँ साहब अक्सर आकर वही बैठ जाते। उनका कद औसत से काफी लम्बा था वे सफेद कुर्ता और चूडीदार पायजामा जिसकी मोहरियो मे जाली कटी होती पहनते थे। सिर पर दुपल्ली टोपी और हाथ मे फिरोजे की अँगूठी और चॉदी की मूँठ की छडी होती। कुल मिलाकर उनका पूरा व्यक्तित्व बडा रोबीला था। उनके कमरे मे आते ही जैसे पूरा माहौल बदल जाता। इलियास खॉ साहब अपनी गद्दी से खिसक जाते। बड़े उस्ताद साहब वही बैठ कर सितार मिला मिला कर हमे पकडाने लगते। और तभी कभी ऐसा होता कि सितार मिलाते मिलाते न जाने कोई साज उन्हे भा जाता या कोई राग उनके मन पर छा जाता अचानक उनकी उँगलियाँ तारो पर दौडने लगती और तार स्वर ताल मे झनझना उठते। हम सभी की स्थिति मत्र मुग्ध श्रोता की हो जाती। अकस्मात एक मीठी झिडकी इलियास खॉ साहब के लिए सुनाई पडती देखते क्या हो बजाओ। इस झिडकी का मुख्य भाव अपने शागिर्द को कुछ सिखा देने का मूल मत्र ही होता। ऐसे मे दोनो के सितारो पर एक साथ झकार किसी मच पर सम्पन्न हो रहे मिष्पादन जैसी होती।

एक दिन की बात है बड़े उस्ताद साहब सितार बजा रहे थे उनके शिष्य इलियास खॉ साहब उसे उतारते चल रहे थे। हम सभी उत्सुकता से देख सुन रहे थे। बडे उस्ताद साहब ने कोई टुकडा लगाया पर उनके शिष्य का हाथ अटक गया बडे उस्ताद साहब ने दुहराया शिष्य ने फिर असफल प्रयास किया बडे उस्ताद साहब ने शिष्य की ओर देखा जरा ठहरे और फिर पूरे स्वर समूह को झनझना कर समेट लिया। इस बार शिष्य ने पूरी सतर्कता से पकडते पकडते भी न जाने कहाँ गलती कर दी कि बडे उस्ताद साहब तमतमा गये अचानक उनके शिष्य यानी हमारे उस्ताद के सिर पर हमारे सामने ही भरपूर टीप पडी चटाक हम सभी कोरस मे सीत्कार कर उठे तानपूरे के तारो पर चलती उँगलियॉ सिहर कर ठहर गईं अवाक हम पूरी तरह सामान्य भी न हो पाये थे कि देखा इलियास खाँ साहब हमारी उपस्थिति से बेखबर इत्मीनान से वह टुकडा बजा रहे थे और बडे उस्ताद साहब मुस्कुराते हुए कह रहे थे देखा दिमाग के खिडकी दरवाजे खुल गये अब कैसे नही

बजेगा ? उनका गुस्सा जैसे तमतमाता हुआ आया था वैसे ही झनझनाता हुआ चला गया। दोनो मे से किसी के चेहरे पर दो क्षण पहले की घटना का कोई चिह्न शेष नही था। हमे लगा कि शायद वह टीप उस्ताद साहब के नही हमारे सिर पर पडी थी।

ऐसी ही गुरु शिष्य की भारतीय परम्परा निर्वाह की एक घटना जो हमारे पिताजी द्वारा बताई गई थी वहाँ ताजा हो गई। पिताजी ने इसे स्वय देखा था। एक बार शाने लखनऊ नृत्य शिरोमणि कथक चक्रवर्ती महाराज कालका दीन बिंदादीन के वशज अच्छन महाराज और शम्भू महाराज मच पर थे। अच्छन महाराज तबला बजा रहे थे और शम्भू महाराज नृत्य कर रहे थे। यो तो ये दोनो भाई भाई थे किन्तु अच्छन महाराज (बिरजू महाराज के पिता) शम्भू महाराज से आयु मे काफी बडे थे और उन्होंने शम्भू महाराज को शिष्यवत शिक्षा दी थी। एक प्रदर्शन मे जैसा कि हमारे पिताजी ने देखा अच्छन महाराज जी तबले पर सगत कर रहे थे और कोई बोल शम्भू महाराज को निकालना था। दो तीन बार ताल देने के बाद भी जब शम्भू महाराज के नूपुर उसे लयबद्ध न कर सके तो अच्छन महाराज का धैर्य टूट गया और बिजली की फुर्ती से उठे और उन्होने एक भरपूर तमाचा शम्भू महाराज जी के गाल पर जड़ दिया कतई बेसुरा। दर्शक अवाक रह गये। लेकिन दर्शको की उपस्थिति से कतई बेखबर उस पूरे पडाल मे जैसे केवल दो ही लोगो का वजूद था– अच्छन महाराज और शम्भू महाराज ! छोटे भाई गिड़गिडा रहे थे मेरे बडे भाई मेरे बाप मेरे गुरु ! एक मौका और दे दीजिये और तब बडे भाई फिर तबले पर वापस आये जोडी सम्हाली और पुन धमक कर बोल ठोक दिये। शम्भू महाराज मत्रमुग्ध से सुनते रहे और मोहनिद्रित से थिरक पडे। यथावत तबले और घुँघरू के बोल एकाकार हो गये। इधर आवृत्ति पूरी हुई और सम की थाप के बाद नर्तक भाई पूर्ण मुद्रा मे स्थिर भी न हो सके थे कि बडे भ्राता ने लपक कर उन्हे आगोश मे जकड लिया अरे वाह बेटे वाह वाह ! अरे कालका बिन्दा की शान जीते रहो वाह और इसी मे शामिल हो गई हजारो दर्शको की तालियो की गडगडाहट ऑखो मे हर्ष और प्रशसा की चमक के साथ।

अपनी कक्षा मे घटी उपरोक्त घटना को छोडकर मैंने बडे उस्ताद साहब को कभी गुस्सा होते नही देखा। इलियास खॉ साहब प्राय एक महीने के लिए सगीत कार्यक्रम के लिए सुदूर पूर्व गये थे। इस अवधि मे हमे बडे उस्ताद से भी सीखने का सौभाग्य मिला था। हम लोगो से वे यही कहा करते भई मेहनत करो शरबत नही है कि घोल कर पी लोगी।

इलियास खॉ साहब जब लौटे तो बडे उस्ताद ने उनके किसी कार्यक्रम की बड़ी सराहना की। यह कार्यक्रम उन्होने खासतौर पर कही होटल मे बैठकर रेडियो पर सुना था। लक्ष्मी और सरस्वती की यह विडम्बना कि सरस्वती के वरद पुत्र की एक रेडियो खरीदने की भी हैसियत नही और फिर भी उन्हे उसकी कोई कुण्ठा या किसी तरह का कोई मलाल नही। आज भौतिकता की आपाधापी मे सरस्वती भले ही पीछे छूट जायँ पर ऐश्वर्य की चकाचौध फीकी न पडे शायद इन गुरुओ ने यह स्थिति कभी स्वप्न मे भी न सोची होगी। शिष्य के कार्यक्रम की सुनने की लालसा मे अपनत्व का भाव और उसमे सन्निहित गर्व यदि

बडे उस्ताद साहब को होटल तक खीच ले गया केवल एक रेडियो के लालच मे तो शिष्य की विनम्रता आदर की पराकाष्ठा भी कम सराहनीय नही थी। इलियास खॉ साहब ने अपनी प्रशसा यह कहकर कबूल की कि उस्ताद उस दिन साज ही कुछ उम्दा बोल रहा था। बोलचाल का यह लखनवी लहजा भी उन्होने शायद बडे उस्ताद से ही पाया होगा जिनकी कभी भी कोई तारीफ करता या उनके ऊपर लिखे गये लेख का जिक्र करता तो उनका एक ही उत्तर होता अरे भई हम किसमे है ।

बडे उस्ताद साहब का स्वभाव बडा विनोदी था। कुछ न कुछ दिलचस्प बात वे हमेशा करते रहते। एक बार उन्होने इलियास खॉ साहब के दो मासीय पुत्र के लिए पूछा

छोटे साहबजादे क्या करते रहते है ?

जी कुछ नही वे क्या करेगे ? उस्ताद का उत्तर था।

वे फिर बोले अरे भई रोते तो होगे तो सुर मे रोते है न सभी लोग ठहाका लगाकर हँस पडे। यह बालक चन्द माहो की आयु लेकर आया था। एक अल्पकालिक बीमारी ने उसे खुदा का प्यारा कर दिया था। हमे याद है वह दिन जब बडे उस्ताद साहब इलियास खॉ साहब को ढाढस बॅधाते बॅधाते स्वय रो पडे थे।

अन्तिम बार बीमार पडने से पूर्व जब वे अच्छे होकर आये तो बडे प्रसन्न थे। क्लास के बाहर ही एक बेच पर बैठ गये। पास से सरोद वादक एक बगाली अध्यापक निकल रहे थे। उन्हे देखकर बडे जोर से पुकारा आशून बोशून ।

उस्ताद आज बडे मूड मे है किसी ने कहा।

बडे उस्ताद वास्तव मे बडे जोश मे थे कहने लगे अब हम अच्छे हो रहे है। देखो हमारी सेहत कितनी सुधर गई है।

लेकिन कौन जानता था यह चिराग बुझने से पहले की लौ है। बहुत जल्दी उनका स्वास्थ्य फिर बिगड गया इस बार जो पडे तो फिर उठ न सके। हमेशा मुस्कराने वाले उस्ताद का आत्म विश्वास उनके सितार टूटने के साथ ही टूट गया। आले मे रेहल के ऊपर कुरान शरीफ रखी थी वही नीचे उनका सितार रखा हुआ था। रात मे चूहो के दुन्द से रेहल सितार पर गिरी और सितार टूट गया। यह उनके लिए बहुत बडा अपशकुन था जिससे मानो उन्हे मौत का इलहाम हो गया। वे बार बार यही कहते रहे मेरा सितार टूट गया यह अच्छा नही हुआ अब मैं बचूँगा नही । वैसा ही हुआ १४ अक्टूबर सन ६२ को दिन ढलते ढलते उनकी सॉसो का सिलसिला टूट गया।

उनके इन्तकाल पर इलियास खॉ साहब फूट फूट कर रोये थे। शोक सभा मे जब उनसे बोलने को कहा गया तो हिचकियो से उनका गला रुँध गया और एक भी शब्द उनके मँह से न फूटा।

उस्ताद यूसुफ अली खाँ के सितार वादन की बारीकियाँ और माधुर्य वर्णन मे यह श्रवणशक्तिहीन लेखनी निश्चय ही अक्षम है। उन्हे जिसने सुना है मेरे विचारसे वह गूँगे

की भाँति उसका रसास्वादन मात्र कर सकता है बस।

यूसुफ अली खाँ साहब खानदानी सितारवादक नही थे आपक वालिद उस्ताद भोदू की उत्तर प्रदेश मे इकलौती सितार की दुकान थी। यह दुकान क्या सगीत की वह चौखट थी जहाँ बराबर बड़े बडे सगीतज्ञो की बैठक लगी रहती और जाडो मे चाय तथा गर्मियो मे शरबत का दौर बराबर चलता रहता। दूर दूर के उस्ताद और सितारिये यहाँ सितार बनवाने आते थे और ठहरते भी थे। इन सभी उस्तादो से सीखने के अवसर बड़े उस्ताद को मिले थे जिनका उन्होने भरपूर लाभ उठाया था। परिणामत उनके वादन मे सभी घरानो की मुख्य विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं। उनके प्रमुख उस्ताद अब्दुल गनी खाँ साहब थे। आपका वाद्य कालपी घराने का मुख्य तन्त्र वाद्य है। अब्दुल गनी खाँ के वालिद मशहूर ध्रुपदिये और बीनकार कालपी घराने से सबधित थे। इस घरान की प्रमुख विशेषता है कि इसमे पहले ध्रुपद गाने के बाद आलाप के चारो पद (तुक) बजाये जाते हैं। उस्ताद यूसुफ अली खाँ ने भी इसी शुद्ध ध्रुपद शैली मे अपने बाज को सजाया जिसमे परम्परागत तन्त्र वाद्य का बाहुल्य परिलक्षित होता हैं। बाद मे यह विशेषता उनकी शिष्य परम्परा अर्थात श्री इलियास खाँ एव श्री इस्माइल खॉ (उनके बेटे) के सितार वादन मे दृष्टिगत हुई।

लखनऊ से बडे उस्ताद को बहुत प्यार था। सन १९३३ ३४ ई० मे वे रियासते गिद्धौर (बिहार) गये थे। उस्ताद मुहम्मद अली खाँ तानसेन की आठवी पीढ़ी के वशज राजा साहब के गुरु थे। वहाँ दशहरे के दिन तमाम गायको वादका का एक प्रतियोगितात्मक सगीत कार्यक्रम हुआ जिसमे बड़े बडे खानदानी सगीतज्ञो ने भाग लिया। प्रतियोगिता के इनाम मे रु १००० नकद सोने का तमगा एक दुशाला बनारसी साफा और एक थान कमखाब के अतिरिक्त सबसे बड़ा आकर्षण था रियासत की स्थायी मुलाजमत। बड़े बड़े सगीतज्ञ दूर दूर से आये और उन्होने इसमे भाग लिया। लेकिन जीतने का गौरव उस्ताद यूसुफ अली खाँ को प्राप्त हुआ था। लोगो ने उत्सुकता कौतूहल स्पर्धा और ईर्ष्या की अलग अलग और मिली जुली भावना से उन्हे बधाई दी। सभी को लग रहा था कि अब तो यूसुफ अली खाँ साहब के पाँव जमीन पर नही पड़ेगे। लेकिन उस्ताद ने विनयपूर्वक दरबार का मुलाजिम बनना अस्वीकार कर दिया। वे लखनऊ मे पले थे रहे थे लखनऊ छोडना उनके लिए नामुमकिन था। अपने सत्कार के लिए शुक्रिया अदा करके आखिर मे उन्होने राजा साहब से अपनी असमर्थता यह कह कर व्यक्त की लखनऊ हम पर फिदा और हम फिदाये लखनऊ क्या यह ताकत आसमाँ की जो छुडाये लखनऊ। जीते जी उन्होने लखनऊ नही छोड़ा। उसके लिए सब कुछ छोड़ दिया। भले ही एक रेडियो भी न खरीद सके हो।

आज बड़े उस्ताद साहब लखनऊ मे नही हैं दुनिया मे भी नही हैं लेकिन उनका नाम अमर है स्वर साधना अमर है उनकी सगीत परम्परा से सगीत जगत गुजित है। उन्होने अपने साज को जैसा सजाया था वह वाद्य परम्परा का भूषण हैं।

श्रीमती महादेवी वर्मा

स्वनामधन्य श्रीमती महादेवी वर्मा को आमने सामने मात्र कुछ फुटो की दूरी से सुनने का वह मेरा पहला अवसर था। इससे पूर्व (उनके सस्मरणो के माध्यम से) ३३ वर्ष की आयु मे एक साथ बनी माँ और नानी के रूप मे निराला जी की अनुजा और लछमा की सहेली के रूप मे और ऐसे ही कुछ अन्य रिश्तो की सजीवता मे मैने उन्हे पहचाना था। उस दिन एक छोटे से समारोह मे इन सभी सबधो की मिली जुली छवि को सामने देखा तो कई कई बार पढ़े सस्मरणो के अनेक पात्र सिनेमा की रील की तरह मानस पर घूम गये। मैंने अपने आपको एक विचित्र सी मत्र मुग्धता की स्थिति मे बँधा हुआ सा महसूस किया था। महादेवी जी बोल रही थी पीडा सार्वभौमिक क्यो हो जाती है करुणा क्यो समवेत स्वरो मे उभरती है हँसी के तो अनेक रूप होते है प्रसन्नता का उपहास का व्यग्य का कटाक्ष का विजय का और वैराग्य का भी किन्तु किन्तु आँसू का केवल एक रग होता है श्वेत धवल अश्रु और हास्य का यह विवेचन मेरे लिए जितना नया था उतना ही मन को छूने वाला भी। करुण पक्ष की सवेदना मेरे मन मे उतर गई थी।

अगले दिन सयोग से महादेवी जी हमारे निवास पर पधारी थी। वह दिन हमारे लिए किसी उत्सव से कम नही था। उन्हे हमारे पूज्य पिताजी से कुछ आवश्यक विचार विमर्श करना था। औपचारिक वार्ता के बाद वे सहज भाव से घर के अदर के बरामदे मे आ गई जहाँ हम लोग केवल परिवार के सदस्य ही थे। मेरी माँ से वे हाल चाल पूछती रही। अपने विषय मे भी कुछ कुछ बता रही थी। इसी बातचीत के दौरान उन्होने पिताजी को सबोधित करते हुए माँ से कहा यह मेरा छोटा भाई है न दुष्ट छोटा भाई कैसे सम्हालती हो इसे ? माँ केवल मुस्करा भर दी। उसी क्षण हमने देखा वे अपने दोनो हाथ पूरे ऊपर उठाये हुए दोनो हथेलियो से पिताजी का सिर सहला रही थी पूरे वात्सल्य के साथ ।

मेरे जीवन का वह गुडिया युग था। मेरी गुडियो की कई एकल प्रदर्शनियाँ लखनऊ तथा अन्य नगरो मे आयोजित की जा चुकी थी। प्राय डेढ दो माह बाद एक प्रदर्शनी दिल्ली मे होनी थी आल इडिया फाइन आर्टस एण्ड क्राफ्टस सोसायटी (AIFACS) की गैलरी मे जो कई महीने पहले से आरक्षित थी। दिल्ली जाने से पूर्व एक प्रदर्शनी लखनऊ मे भी होनी थी। मन मे आया यदि महादेवी जी मेरी इस गुडिया प्रदर्शनी का उदघाटन कर दे तो कितना

अच्छा हो। किन्तु जाने क्या हुआ। बार बार चाह कर भी उस समय उनसे कह न पाई और उनके चले जान के बाद अपने ऊपर बडी खीझ आई। खैर बाद मे उन्हे एक पत्र लिखा पूरे विस्तार से और लखनऊ के हाल की बुकिंग का दिन देते हुए उनसे आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। उन्होने कृपापूर्वक स्वीकृति दे दी। उन दिनो वे हिन्दी समिति की कार्यकारिणी की सदस्या भी थी। अत सोचा यदि कार्यकारिणी की बैठक इसी तिथि के आस पास लग जाये तो उनका आना सुनिश्चित हो जायेगा। बैठक होनी ही थी तिथि मेरी सुविधानुसार निश्चित करने के लिए श्रद्धेय ताऊ जी (श्री अमृत लाल नागर) को मध्यस्थ बनाया। ताऊ जी के वात्सल्य और आशीषकोष पर मै अपना विशेष अधिकार मानती थी और चूँकि यह अधिकार उन्होने ही मुझे स्नेहपूर्वक दिया था इसकी रक्षा का भार भी उन्ही का था। ताऊ जी के प्रभाव का मुझे लाभ मिला। बैठक की तिथि का मेरी प्रदर्शनी की तिथि के साथ ताल मेल बैठ गया। महादेवी जी मुझे तो स्वीकृति पहले ही दे चुकी थी पर यह सूचना भी उन्हे फोन पर दे दी गई और मेरी समझ मे अब उनके न आने की सभावना को मैंने कतई क्षीण कर दिया था। निमत्रण पत्र छपा लिये गये। अध्यक्षता ताऊ जी ने करना स्वीकार कर लिया मैं दुहूँ हाथ मोदक मोरे से गदगद प्रदर्शन की तैयारी मे जुट गई।

प्रदर्शनी सूचना केन्द्र मे आयोजित थी। उदघाटन समारोह मे अभूतपूर्व भीड थी। कुछ गुडियो के लिए और अधिक महादेवी जी के लिए। उनका भाषण आज मेरे प्रति होगा मेरी गुडियो के प्रति होगा। यह विचार मात्र मुझे रह रह कर पुलकित प्रफुल्लित रोमाचित कर रहा था। उदघाटन का समय आया और मेरे प्रिय प्रतीक्षित महादेवी जी के भाषण का समय भी उन्होने बात अपने बचपन की गुडियो के सस्मरण से शुरू की तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गुडियो की चर्चा की। गुडियो के निर्माता और प्रकृति का जिक्र करते हुए जब उनके मुख से यह निकला कि गुडिया तो शिल्प की कविता होती है मुझे क्या पता था कि मेरी बेटी ही इनकी सुन्दर शिल्प कवयित्री है तो लगा कि जैसे शब्द कानो मे झिलमिलाने लगे सहसा अपने अदर मैं कुछ खोजने सी लगी थी। शिल्प कवयित्री का विशेषण मुझे अदर तक रोमाचित कर गया था। इसके आगे पीछे भी उन्होने मेरी नन्ही रचनाओ और मेरे प्रति बहुत कुछ शुभ प्रशसात्मक और उत्साहवर्धक कहा था। उनकी अदभुत वाक्यावली से सभी लोग विभोर थे मेरा तो कहना ही क्या था । जब मुझे कुछ बोलने को कहा गया तो बहुत उछाह भुवन अति थोरा मे पुलकित तन मुख आव न बचना की स्थिति हो गई थी मेरी।

उदघाटन के बाद अनेक दीयमान उदीयमान कवि लेखको ने उन्हे घेर लिया था। कोई अपना नवीन कविता सग्रह उन्हे भेंट करना चाहता, कोई कही निमत्रित करने का इच्छुक था किसी को अपने कार्यक्रम मे उनके न पधार सकने की शिकायत थी तो कोई स्वय इलाहाबाद धमकने की धमकी दे रहा था। महादेवी जी हर किसी को समझाती फुसलाती, दुलराती अशीषती जा रही थी। इसी बीच एक सज्जन ने महादेवी जी की किसी

श्रीमती महादेवी वर्मा

स्वनामधन्य श्रीमती महादेवी वर्मा को आमने सामने मात्र कुछ फुटो की दूरी से सुनने का वह मेरा पहला अवसर था। इससे पूर्व (उनके सस्मरणो के माध्यम से) ३३ वर्ष की आयु मे एक साथ बनी माँ और नानी के रूप मे निराला जी की अनुजा और लछमा की सहेली के रूप मे और ऐसे ही कुछ अन्य रिश्तो की सजीवता मे मैने उन्हे पहचाना था। उस दिन एक छोटे से समारोह मे इन सभी सबधो की मिली जुली छवि को सामने देखा तो कई कई बार पढ़े सस्मरणो के अनेक पात्र सिनेमा की रील की तरह मानस पर घूम गये। मैंने अपने आपको एक विचित्र सी मत्र मुग्धता की स्थिति मे बँधा हुआ सा महसूस किया था। महादेवी जी बोल रही थी पीडा सार्वभौमिक क्यो हो जाती है करुणा क्यो समवेत स्वरो मे उभरती है हँसी के तो अनेक रूप होते है प्रसन्नता का उपहास का व्यग्य का कटाक्ष का विजय का और वैराग्य का भी किन्तु किन्तु ऑसू का केवल एक रग होता है श्वेत धवल अश्रु और हास्य का यह विवेचन मेरे लिए जितना नया था उतना ही मन को छूने वाला भी। करुण पक्ष की सवेदना मेरे मन मे उतर गई थी।

अगले दिन सयोग से महादेवी जी हमारे निवास पर पधारी थी। वह दिन हमार लिए किसी उत्सव से कम नही था। उन्हे हमारे पूज्य पिताजी से कुछ आवश्यक विचार विमर्श करना था। औपचारिक वार्ता के बाद वे सहज भाव से घर के अदर के बरामद मे आ गई जहॉ हम लोग केवल परिवार के सदस्य ही थे। मरी मॉ से वे हाल चाल पूछती रही। अपने विषय मे भी कुछ कुछ बता रही थी। इसी बातचीत के दौरान उन्होने पिताजी को सबोधित करते हुए मॉ से कहा यह मेरा छोटा भाई है न दुष्ट छोटा भाई कैसे सम्हालती हो इसे ? मॉ केवल मुस्करा भर दी। उसी क्षण हमने देखा वे अपने दोनो हाथ पूरे ऊपर उठाये हुए दोनो हथेलियो से पिताजी का सिर सहला रही थी पूरे वात्सल्य के साथ ।

मेरे जीवन का वह गुडिया युग था। मेरी गुडियो की कई एकल प्रदर्शनियॉ लखनऊ तथा अन्य नगरो मे आयोजित की जा चुकी थी। प्राय डेढ दो माह बाद एक प्रदर्शनी दिल्ली मे होनी थी आल इडिया फाइन आर्टस एण्ड क्राफ्टस सोसायटी (AIFACS) की गैलरी मे जो कई महीने पहले से आरक्षित थी। दिल्ली जाने से पूर्व एक प्रदर्शनी लखनऊ मे भी होनी थी। मन मे आया यदि महादेवी जी मेरी इस गुडिया प्रदर्शनी का उदघाटन कर दे तो कितना

अच्छा हो। किन्तु जाने क्या हुआ। बार बार चाह कर भी उस समय उनसे कह न पाई और उनके चले जाने के बाद अपने ऊपर बडी खीझ आई। खैर बाद मे उन्हे एक पत्र लिखा पूरे विस्तार से और लखनऊ के हाल की बुकिंग का दिन देते हुए उनसे आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। उन्होने कृपापूर्वक स्वीकृति दे दी। उन दिनो वे हिन्दी समिति की कार्यकारिणी की सदस्या भी थी। अत सोचा यदि कार्यकारिणी की बैठक इसी तिथि के आस पास लग जाये तो उनका आना सुनिश्चित हो जायेगा। बैठक होनी ही थी तिथि मेरी सुविधानुसार निश्चित करने के लिए श्रद्धेय ताऊ जी (श्री अमृत लाल नागर) को मध्यस्थ बनाया। ताऊ जी के वात्सल्य और आशीषकोष पर मै अपना विशेष अधिकार मानती थी और चूँकि यह अधिकार उन्होने ही मुझे स्नेहपूर्वक दिया था इसकी रक्षा का भार भी उन्ही का था। ताऊ जी के प्रभाव का मुझे लाभ मिला। बैठक की तिथि का मेरी प्रदर्शनी की तिथि के साथ ताल मेल बैठ गया। महादेवी जी मुझे तो स्वीकृति पहले ही दे चुकी थी पर यह सूचना भी उन्हे फोन पर दे दी गई और मेरी समझ मे अब उनके न आने की सभावना को मैने कतई क्षीण कर दिया था। निमत्रण पत्र छपा लिये गये। अध्यक्षता ताऊ जी ने करना स्वीकार कर लिया मै दुहूँ हाथ मोदक मोरे से गदगद प्रदर्शन की तैयारी मे जुट गई।

प्रदर्शनी सूचना केन्द्र मे आयोजित थी। उदघाटन समारोह मे अभूतपूर्व भीड़ थी। कुछ गुडियो के लिए और अधिक महादेवी जी के लिए। उनका भाषण आज मेरे प्रति होगा मेरी गुडियो के प्रति होगा। यह विचार मात्र मुझे रह रह कर पुलकित प्रफुल्लित रोमाचित कर रहा था। उदघाटन का समय आया और मेरे प्रिय प्रतीक्षित महादेवी जी के भाषण का समय भी उन्होने बात अपने बचपन की गुडियो के सस्मरण से शुरू की तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर गुडियो की चर्चा की। गुडियो के निर्माता और प्रकृति का जिक्र करते हुए जब उनके मुख से यह निकला कि गुडिया तो शिल्प की कविता होती है मुझे क्या पता था कि मेरी बेटी ही इनकी सुन्दर शिल्प कवयित्री है तो लगा कि जैसे शब्द कानो मे झिलमिलाने लगे सहसा अपने अदर मैं कुछ खोजने सी लगी थी। शिल्प कवयित्री का विशेषण मुझे अदर तक रोमाचित कर गया था। इसके आगे पीछे भी उन्होने मेरी नन्ही रचनाओ और मेरे प्रति बहुत कुछ शुभ प्रशसात्मक और उत्साहवर्धक कहा था। उनकी अदभुत वाक्यावली से सभी लोग विभोर थे मेरा तो कहना ही क्या था । जब मुझे कुछ बोलने को कहा गया तो बहुत उछाह भुवन अति थोरा मे पुलकित तन मुख आव न बचना की स्थिति हो गई थी मेरी।

उदघाटन के बाद अनेक दीयमान उदीयमान कवि लेखको ने उन्हे घेर लिया था। कोई अपना नवीन कविता सग्रह उन्हे भेट करना चाहता कोई कही निमत्रित करने का इच्छुक था किसी को अपने कार्यक्रम मे उनके न पधार सकने की शिकायत थी तो कोई स्वय इलाहाबाद धमकने की धमकी दे रहा था। महादेवी जी हर किसी को समझाती फुसलाती, दुलराती अशीषती जा रही थी। इसी बीच एक सज्जन ने महादेवी जी की किसी

वायदा खिलाफी का हवाला देते हुए कुछ दभपूर्वक अपने किसी आयोजन की तारीफो के पुल बॉध दिये और उसके बाद भविष्य मे अपने किसी कार्यक्रम के लिए उनसे पक्का वायदा लेने का इसरार करने लगे। महादेवी जी बडे दुलार से झुँझलाईं देखो हमारा तो कवि लेखको से नाता है तुम तो अकवि हो अकवि या अलेखक से क्या बात करे ? और वे किसी दूसरे के प्रति मुखातिब हो गई।

हिन्दी समिति की बैठक अगले दिन थी। दिल्ली प्रदर्शनी के लिए एक स्मारिका छपनी थी। सोचा यदि महादेवी जी के विचार लिपिबद्ध हो जाये तो स्मारिका की गरिमा बढ़ जायेगी। मैं हिन्दी भवन पहुँची। बैठक चल रही थी। अत सबद्ध कर्मचारियो से बैठक के समापन पर महादेवी जी से मिलवा देने का अनुरोध किया। उन्होने जब औपचारिक बैठक पूर्ण हो गई और चाय भेजी जाने लगी तो मुझे भी अदर भेज दिया। मैंने बिना किसी भूमिका के सीधे से अपना मन्तव्य प्रकट कर दिया।

महादेवी जी हँस पडी बोली– अरे इसलिए तुम इतनी देर से रुकी हो। तुम मुझे पत्र भी लिख देती तो यह मैं तुम्हे डाक से भेज देती।

तो क्या यह अभी नही लिखेगी । मैने सोचा।

वे सभवत मेरी घबराहट भाँप गई। पुन हँसते हुए बोली क्या जल्दी है ?

मैने कहा स्मारिका प्रेस मे जा रही है अत

मेरा वाक्य पूरा भी न होने पाया था कि उन्होने वही मेज से एक कागज उठा लिया और उसे एक फाइल कवर पर रख कुछ लिखने लगी। मै मेज के इस पार कुछ दूर पर खडी थी। मैंने देखा वे अक्षरो के छोटे बडे समूह बना रही है और प्रत्येक समूह के मस्तक को जैसे चूडामणि से सजाती जा रही हैं। कुछ क्षणो बाद उन्होने कागज मेरे हाथ मे थमा दिया बस ।

मैंने पढ़ा कतिपय कविताओ के आधार पर भी उन्होने गुडियो का निर्माण किया है नृत्य जैसी गतिमय कलाओ के आधार पर भी इन सभी मे जीवन की सजीवता तथा वैभव दर्शनीय है। हस्तकला शिल्प मे गुडियो का वही स्थान है जो साहित्य मे कविता का ।

इसे पढ़ने के बाद मैंने जब कृतज्ञतापूर्व ऑखे ऊपर उठाई तो वे बैठक मे उपस्थित सदस्यो से कह रही थी। इसकी गुड़ियो ने मुझे बुला लिया तो मै बैठक मे भी सम्मिलित हो गई वरना इस बार भी मेरा आना न हो पाता ।

सभी लोग जैसे सराहना भरी दृष्टि से मेरी ओर देख रहे थे और मैं चाह कर भी वहाँ यह न कह पाई कि उस बैठक की तिथि निर्धारित करवाने से पहले मेरी क्या शका थी।

मायानगरी मैक्सिको

वह मेरी पहली विदेश यात्रा थी। मैक्सिको मे होने वाले समाजशास्त्र के एक अन्तर्राष्ट्रीय अधिवेशन मे मुझे अपना शोधपत्र प्रस्तुत करना था। प्राथमिक औपचारिकताओ के बाद हवाई टिकट और यात्रा मार्ग निर्धारित हुआ। रूट तय हुआ– भारत से लदन होते हुए न्यूयार्क और फिर न्यूयार्क से मैक्सिको। पूरी यात्रा मे भारत से न्यूयार्क के बीच आते जाते क्रमश दो पडावो की सुविधा। कार्यक्रम को अतिम रूप देने के लिए जब घर मे जिक्र किया तो किसी ने चुहल की। लखनऊ से दिल्ली दिल्ली स लदन लदन से न्यूयार्क और तब कही न्यूयार्क से मैक्सिको। इतने लम्बे रूट से जाने की क्या जरूरत है। शार्ट कट से चली जाओ ।

इससे छोटा रास्ता और कौन सा है ? मेरी उत्सुकता जागी।

तो उत्तर मिला– यहॉ स खोदा और सीधे ग्लोब के दूसरी ओर मैक्सिको पहुँच जाओ बस। सभी ठठाकर हॅस पडे। उस समय ऐसा लगा कि बात परिहास मे उड गई पर उडते उडते भी मेरे मस्तिष्क के किन्ही तन्तुओ को छू अवश्य गई।

धरती खोदना और खोदते खोदते मैक्सिको पहॅुच जाना यह विचार अर्द्धचेतन मे यत्र तत्र बिखरी कितनी ही पुरानी बातो को कुरेदने लगा। पृथ्वी को खोदो तो पानी निकलता है फिर उसके नीचे कई और तल है अतल वितल नितल गर्भस्तितल महातल सुतल और पाताल। पाताल का वर्णन भी कही पढा था। वहाँ सुन्दर सुन्दर महल बने है तथा वहॉ पर दैत्य दानव यक्ष एव सर्पदेव निवास करते है। दानवो मे मय दानव के नाम का विशेष उल्लेख मिला था कि उसका निवास स्थान पाताल लोक मे है। हमारे कुल पुरोहित ने हमे बिना आसन बिछाये जमीन पर बैठकर पूजा का निषेध करते हुए बताया था कि पाताल लोक मे रहने वाले मय दानव को यह वरदान है कि आसनविहीन भूमि पर बैठकर पूजा करने वाले की पूजा का फल उस दानव को ही मिलेगा आराधक को नही।

इधर मस्तिष्क के दूसरे किसी कोने मे समानान्तर चिन्तन प्रक्रिया चल रही थी और मैक्सिको सबधी छुट पुट ज्ञान भी कल्पना के महल चुन रहा था। मैक्सिको की मूल सस्कृतियॉ ऐजटेक और माया थी। माया का ध्यान आया तो झट मय और माया मे नाता जुडा। माया सस्कृति का मय से जरूर कोई सबध रहा होगा। मैक्सिको की उत्कृष्ट वास्तुकला के नमूने भव्य भवन प्रासाद जगत प्रसिद्ध हैं। महाभारत के भीषण युद्ध के

कारणो मे सर्व प्रमुख मय द्वारा निर्मित वह महल ही था जिसमे भ्रमित दुर्योधन को देखकर द्रौपदी ने उसका उपहास किया था। उसकी वह हँसी ही झगडे की मुख्य जड थी। तो द्रौपदी को अपमानित करने का निर्णय दुर्योधन ने मय निर्मित प्रासाद मे ही लिया था। तो क्या पुराणो मे वर्णित पाताल लोक कही मैक्सिको ही तो नही है ? फिर यहाँ के निवासी कैसे होगे कैसा होगा उन तथाकथित यक्ष दानवो और दैत्यो का रूप ऐसे प्रश्नो ने मेरी विचारमाला मे भाँति भाँति के मनके पिरोने शुरू कर दिये। मैक्सिको का प्रारूप मेरी कल्पना और यथार्थ ज्ञान के दोलदण्ड पर झूलने लगा।

बहरहाल जाना लाग रूट' से ही तय रहा। नियत दिन और समय पर मै हवाई जहाज पर सवार हुई। छुटपुट औपचारिक घोषणाये हुई। पेटी आदि बाँधने के आदेश मिले और वायुयान हर्षवर्द्धन ने भारत की भूमि छोड दी। इस समय सबेरे के पाँच बजे थे। मेरी सीट सयोग से खिड़की के पास ही थी लेकिन बाहर जगमगाती बत्तियो के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नही दे रहा था। पलक झपकते ही इन बिजली के लट्टुओ ने टिमटिमाते तारो का रूप ले लिया और वायुयान अँधेरे को चीरता हुआ उत्तरोत्तर उन्नत होने लगा। पौ फटने से पूर्व धुँधलके से बाहर देखने पर लगा कि जैसे नीचे श्यामल सागर हिलोरे ले रहा है। यह दृश्य भी कुछ क्षणो का ही था। सहसा एक सुनहरी कान्ति पूरे वातावरण मे फैल गयी। हमारे पीछे सूर्य उग रहा था जिसका दर्शन हमे प्राप्य नही था। हमारा जहाज ठीक पश्चिम की दिशा मे उड़ रहा था। चतुर्दिक मण्डल मे व्याप्त लालिमा से बादलो के सुनहरे रुपहले पटल अदभुत लग रहे थे। यह रूप और प्राय इतना ही प्रकाश दुबई तक हमारे साथ रहा। अगला भूमि स्पर्श दुबई मे होना था।

दिल्ली से दुबई पहुँचने मे सवा दो घण्टे लगे। सामान्यत यहाँ यह जहाज एक घण्टे रुकता है। इस बीच यात्रियो को हवाई अड्डा देखने जाने की छूट होती है। सभी यात्रियो के साथ मैं भी चक्कर लगाने चली गई। यहाँ काफी लोग टैक्स फ्री डयूटी फ्री दुकानो से तमाम विदेशी सामान घडियॉ टू इन वन आदि खरीदते है। हमने भी कुछ चीजे देखी पर जीवन मे सभवत पहली बार कुछ भी खरीदने की कतई कोई चाह मन मे नही हुई। शायद यात्रा और कान्फ्रेस मेरे ऊपर पूरी तरह से हावी थे। घूम घाम कर अपनी सीट पर वापस आ गये जहाँ यह घोषणा हो रही थी कि इजन मे कुछ खराबी के कारण विमान कुछ और देर वही रुकेगा। यह समय काटना बडा कठिन लगा। अन्दर अन्दर कुछ ऊबन महसूस होने लगी। तभी घर के लिए पत्र लिखना इस समय का सर्वोत्तम सदुपयोग सूझा और मै अब तक की आपबीती को शब्दो मे बाँधन लगी। नौ बजे विमान वहाँ से उडा।

इस बीच मे सूर्य हमारे कुछ और नजदीक आ गया था। दुबई की धरती पर बालू ही बालू थी तथा यत्र तत्र बिखरे विचित्र कँटीले से वृक्ष दिखाई पडे थे। वायुयान उडा तो प्रात कालीन सूर्य रश्मियो क सम्पर्क से सिकता कण झिलमिलाये और शीघ्र ही ओझल हो गये। बादलो के आवरण को चीर कर विमान ऊपर आकाश तले आ गया था। यो तो बादल

देखने के लिए हम सिर को आसमान की ओर उठाकर ऊपर देखते हैं। पहले पहल जब अपने नीचे बादल देखे तो जान पडा कि सागर मे उनका प्रतिबिम्ब देख रहे हैं। अब बादलो के इस अनन्त प्रसार को देखकर लग रहा था कि बादलो की सरिता प्रवाहित हो रही है। इस अखण्ड घनराशि के अतिरिक्त कुछ भी द्रष्टव्य नही था। मै सोच रही थी जैसा कभी पिताजी ने मुझे मारिशस से भेजे पत्र मे लिखा था कि कैसा होगा श्री रामचन्द्र का पुष्पक जो उनकी इच्छा से कभी पक्षियो कभी मेघो और कभी वायु मार्ग से सचरित होता था। उन्होने सीता से कहा था यथा यथा मे मनसाभिलाषा तथा तथा सचरते विमानम । यहाँ मेरे मनसाभिलाष का कोई प्रश्न नही था। हर्षवर्धन' अनवरत अपने नियत मार्ग पर उड रहा था। पिताजी ने अपनी वायुयान यात्रा मे ऐसा ही अनुभव मुझे लिखा था।

दिल्ली से चले हुए छ घण्टे से अधिक हो चुके थे। भारतीय समयानुसार लगभग १२ बजे हमे लच दिया गया। दुबई से लदन की यात्रा मे प्राय सात घण्टे लगे थे। जब हम लदन पहुँचे तो वहाँ पर ठीक बारह बजा था। हीथ्रो हवाई अड्डा देखने की भी अनुमति यात्रियो को दी जाती है। लदन मे काफी सख्या मे यात्री उतरते हैं और अमरीका जाने वाले पर्याप्त नये चढ़ते है। यहाँ जहाज पूरे दो घण्टे रुकता है। हमारा वायुयान स्थानीय समयानुसार दो बजकर पाँच मिनट पर पुन उड चला सीधे न्यूयार्क के लिये। अभी सूर्य अपने पूर्ण यौवन पर था और हम उसी ऊष्मा को बरकरार रखते हुए सुदूर पश्चिम मे अग्रसर थे। लदन मे कान्फेस मे ही भाग लेने वाले कुछ अन्य परिचित भी मिल गये थे। अचानक विदेश मे मिलकर सभी लोग परम पुलकित हुए। वहाँ उनसे मिलने बतियाने का सुख भी विरल ही था। थोडी देर बाद अपनी सीट पर लौट कर फिर बाहर झाँका तो देखा कि बादलो के फाहे छँट गये थे। शायद मेरे मनसाभिलाष को उन्होने जान लिया था। हमारा जहाज अटलाटिक महासागर के ऊपर उड रहा था। अत नीचे पानी ही पानी था। कही कही पर टापू और टापुओ पर बसी बस्तियाँ द्रष्टव्य थी जो कृष्ण जन्माष्टमी पर बुरादो से बनी झाँकी की छटा प्रस्तुत कर रही थी। सागर की चादर पर तिरते पोत नन्हे खिलौनो जैसे लग रहे थे तभी वायुयान के रसोईघर मे बर्तनो की खुटर पुटर सुनाई दी। पिछले लच को सात साढ़े सात घण्टे हो चुके थे। अब फिर लच ही सर्व किया जाने वाला था। भोजनोपरात खिडकियो के सभी परदे गिरा कर विमान कक्ष को सिनेमाहाल का रूप दे दिया गया चलचित्र दिखाने के लिये। दुबई और लदन के बीच भी भोजन के बाद इसी प्रकार कोई चित्र दिखाया गया था जिसे हमने सोते जागते देखा था। अब पूर्ण जाग्रतावस्था मे उपहार फिल्म देखी। फिल्म पूरी हुई तो परदे उठा दिये गये। चाय का समय हो चुका था। नीचे अभी भी जल का वही अनन्त विस्तार था। कामायनी की पक्ति याद आई नीचे जल था ऊपर हिम था एक तरल था एक सघन और इसी के साथ याद आने लगा अपने से क्षण प्रतिक्षण दूर होता भारत। मैं हेडफोन चढ़ाकर देशी विदेशी सगीत मे अपने को रमाने की कोशिश करने लगी। इसी बीच पता नही कब झपकी आ गई। एकाएक किसी घोषणा से चौंककर आँख खुली। फिर सावधानीपूर्वक पेटियाँ बाँधने तथा सिगरेट आदि बुझा देने के

आदेश दिये जा रहे थे। हम थोडी ही देर मे न्यूयार्क पहुँचने वाले थे। यह सात आठ घण्टो का सफर भी अब पूरा हो रहा था। इस विमान सेवा का यह अन्तिम पडाव था। सभी यात्री मुस्तैद सचेत हो गये। उनके चेहरो के भिन्न भिन्न भाव बडे दिलचस्प थे। कुछ जो भारत से चढ़े थे २० घण्टो की लम्बी यात्रा से ऊब चुके थे। कुछ का पहली बार अमरीका देखने का उत्साह उनकी थकान को पनपने नही दे रहा था जैसे हम और कुछ ऐसे भी थे जिन्हे अभी पहुँचते ही कोई अपाइन्टमेन्ट कीप करना था या आज की तारीख मे अपने पहुँचने की रिपोर्ट करनी थी। इन्ही मे हमारे सीट पार्टनर जी थे। यह लोग व्यग्रता से अपनी घडियॉ देख रहे थे। तभी हमारे कैप्टेन द्वारा की गई घोषणा ने उनकी व्यग्रता को और अधिक बढ़ा दिया। हमे बताया गया कि विमान अब कुछ कम ऊँचाई पर आ गया है और वह न्यूयार्क शहर के ठीक ऊपर उड रहा है। लेकिन हैवी ट्रैफिक के कारण अभी जान एफ० कैनेडी हवाई अड्डे पर उतरना सभव नही है। अत २५ मिनट तक वह हवा मे ही रहेगा। कही आकाश का विस्तार भी छोटा पड सकता है और हवाई जहाज भी हैवी ट्रैफिक से ग्रस्त होते है यह सूचना मेरे लिए अपूर्व और अनोखी थी। बहरहाल न्यूयार्क शहर के ऊपर २५ मिनट और उडने की बात मुझे अच्छी लगी। मैंने कही पढ़ा था कि न्यूयार्क शहर का आकार सेब की भॉति है अत इसे दि बिग ऐपल कहा जाता है। इस बिग ऐपल का हवाई दर्शन ही सभव है। निष्प्रयास ही यह सयोग हमारे हाथ लग गया था। सडको द्वारा चारखानो मे बॅटा बसा सुनियोजित बिग ऐपल भी विमान से झॉकी जैसा ही लग रहा था। यहॉ की विश्वविख्यात गगन चुम्बी इमारते नितान्त बौनी दिखाई पड रही थी। इमारतो मे सूर्य किरणो से जगमगाते विशालकाय शीशो की दमक से प्रतीत होता था कि जैसे नन्हे नन्हे घरौदो मे नगीने जडे हो। पार्किग स्थलो मे कतार की कतार रग बिरगी भीमकाय मोटरे बच्चो की चाभी वाली खिलौना कारे नजर आ रही थी। न्यूयार्क की नदी का बलखाता रूप टेढ़ी मेढ़ी रस्सी से अधिक नही था। ठीक २५ मिनट बाद हर्षवर्द्धन को उतरने का सिगनल मिला और फिर कोई ५ मिनट मे उसने अमरीका की भूमि का स्पर्श किया।

अमरीका मे प्रवेश करते ही प्रथम हवाई अड्डे (फर्स्ट पोर्ट आव एन्ट्री) पर बडी सख्त कस्टम चेकिंग होती है। मीलो मील क्षेत्रफल मे फैला हुआ जान एफ० कैनेडी हवाई अड्डा विश्व मे व्यस्ततम है। मुझे बताया गया कि प्रति मिनट यहॉ एक वायुयान उतरता या उडता है। इसी से कस्टम चेकिंग के लिए प्रतीक्षारत यात्रियो की सख्या का अनुमान लगाया जा सकता है। हम भी सामान लेकर लाइन मे लग गये। हमारे काउन्टर की लाइन अपेक्षाकृत छोटी थी तथापि हमारी बारी आते आते ढाई घण्टे लग गये थे। यहाँ के समय से साढ़े तीन बजे हम उतरे थे छ बजे कस्टम के लस्टम पस्टम से निवृत्त हुए।

न्यूयार्क से ऐरो मैक्सिको के विमान द्वारा हमे मैक्सिको रवाना होना था स्थानीय समय से साढ़े छ बजे। ऐरो मैक्सिको की बिल्डिग इस काउन्टर से काफी दूर थी। वहाँ चेकइन का सीमा समय छ बजे था। सामान बुक करा कर भागते दौडते उस विमान मे

पहुँच कर जब अपनी सीट पर धम्म हुए तो जैसे चेतना लौटी। आज के पूरे चौबीस घण्टो के दिवस का अब अवसान हो रहा था और हरिऔध जी के शब्दो मे गगन लालित हो चला था । जहाज ठीक साढे छ बजे उड चला। एक घण्टा और बीता कि सध्या का रक्तिम आवरण रात्रि की कालिमा मे डूब डूब कर अपने अस्तित्व को उसमे विलीन करने लगा।

इस विमान मे बैठते ही हमे विदेश या विदेशता की पहली अनुभूति हुइ। भाषा समस्या यही से प्रारम्भ हो गई थी। सभी अधिकारी कर्मचारी (यानी पूराक्रू) स्पैनिश भाषी थे। डिनर परोसा गया तो देखा कि पूण भोजन सामिष है। अण्डा भी न लेने वाली शुद्ध शाकाहारी पूरे विमान मे शायद मै अकेली ही थी। अब उन स्पेनिश भाषी परिचारिकाओ को अपनी समस्या बताना भी एक समस्या थी। कुछ टेढे मेढे सकेत किये किन्तु निष्फल गये सभी। अतत मै नही खाऊँगी। ट्रे उठा ले जाओ का एक भारी भरकम इशारा किया। वार निशाने पर लगा। कही स थोडा बहुत अग्रेजी समझने बोलने वाले एक कमचारी को ढूँढ कर लाया गया। उसने हमारी बात तो सुनी पर सुनकर वेजीटेरियन जैसे शब्द की सार्थकता पर ही सभवत आश्चर्य और अज्ञान तथा मेरे लिये समुचित व्यवस्था न कर पाने पर औपचारिक खेद व्यक्त करके धीरे से टहल गया। मेरी भी खाने मे विशेष रुचि नही था जरा देर बाद उसी मे से छॉट बीन कर कुछ पनीर मक्खन डबलरोटी आदि वह मेरे लिए ले आया। भाषा भी कितनी अपनी कितनी आत्मीय होती है इसका गहरा एहसास हुआ। साडी और शलवार कुर्ता पहने हिन्दी बोलती अपनी एयर इण्डिया की परिचारिकाये याद आने लगी लेकिन तब भी बिना अग्रेजी के वाक्यो की बैसाखी लगाये हम हिन्दी नही बोल रहे थे। क्यो नही बोल रहे थे ? मुझे अपने आप पर ग्लानि हो रही थी। अपनी मातृ भाषा राष्ट्रभाषा की अकारण उपेक्षा करके क्यो हम अग्रेजी बोलते है ? क्या मिलता है हमे ? क्या सचमुच हमारा मनोविज्ञान उपनिवेशिताग्रस्त हो गया है ? मै सोच रही थी।

खैर यह यात्रा भी पूरी हुई साढे चार घण्टो मे। यहॉ पहली बार हमे विमान से रात्रि का दृश्य देखने का मौका मिला था। अन्यथा तो पूरे २७ घण्टो मे हम सूर्य की गति से होड करते हुए अपनी घडी की सुइयो को पीछे ठेलते हुए और लच पर लच खाते हुए आगे बढ रहे थे। उस दौरान हमे रथ समेत रवि थाकेउ निसा कवन विधि होय की सी अनुभूति हो रही थी। मैक्सिको हवाई अड्डे पर उतरते विमान से जगमगाते मैक्सिको शहर और झील मे पडती उसकी झिलमिलाती परछाई को देखकर अपने नैनीताल की स्मृति ताजा हो आई। इस वक्त स्थानीय समय से रात्रि के साढ़े नौ बजे थे। यहॉ और भारतीय समय मे पूरे १२ घण्टो का अन्तर है यानी दिन और रात उल्टे है ग्लोब मे ठीक दूसरी ओर है न मैक्सिको ।

हमारे ठहरने की व्यवस्था मैक्सिको हवाई अड्डे से काफी दूर पर थी। दुभाषियो की मदद से अपने ठहरने का स्थान आदि का पता करने और वहॉ पहुँचने मे काफी समय लग गया। कान्फ्रेस मे भाग लेने वाले हम पॉच लोग साथ थे। सभी की लगभग एक साथ

व्यवस्था थी।

मैक्सिको शहर आठ हजार फीट ऊँचाई पर स्थित है। अगस्त के महीने मे वहाँ का मौसम भी अगस्त के नैनीताल जैसा ही था। कभी कभी हल्की बूँदाबाँदी और बदली शेष समय छिटकी हुई धूप दिन मे एक स्वेटर और रात मे एक कम्बल की आवश्यकता। हम अगले दिन कान्फ्रेन्स के रजिस्ट्रेशन के लिए गये तो सयोग से हमारी गाडी के सारथी अग्रेजी जानते थे। वे हम भारतीयो को देखकर बडे भावुक से हो गये। वे अपने को मूलत भारतीय ही मानते है। अपनी हथेली का पिछला हिस्सा दिखाकर कहने लगे देखिये हमारा वर्ण भी आप जैसा ही है। हम लोग तो एक ही देश एक ही प्रजाति के है। भारत के बारे मे कितना कुछ जानने को वे उत्सुक थे मेरा साडी का पहनावा उन्हे बडा अच्छा लगा था। वस्तुत साडी देखकर ही वे समझ गये थे कि मै और मेरे साथी भारतीय है और उन्होने चाहा था कि हम उनकी गाडी मे ही जाएँ। रजिस्ट्रेशन के बाद उन्ही के प्रस्ताव पर हम लोगो ने शहर का एक चक्कर लगा डाला। मूर्ति कला और वास्तुकला की दृष्टि से मैक्सिको शहर बडा सम्पन्न है।

मूर्तिकला मे यद्यपि इटेलियन शैली की प्रमुखता है पर कही कही भारतीयता का पुट भी झलक जाता है। बडे बडे भवन प्रासादो का नामकरण आमतौर से पलासियो अमुक अमुक जैसा ही है अर्थात किसी सज्ञा से सबद्ध पैलेस या प्रासाद के नाम से विख्यात है। नेशनल विश्वविद्यालय भवन जो उस विश्व अधिवेशन का मुख्य स्थल था पलासियो द मिनेरिया है। इस भवन के मुख्य कक्ष मे अन्य तमाम मूर्तियो के साथ ही लेडी मिनेरिया की सगमरमर की मूर्ति भी खड़ी है। उदघाटन समारोह पलासियो द बेलाआर्त भवन मे सम्पन्न हुआ। सफेद सगमरमर से निर्मित शीर्ष के केन्द्र मे बडे से गुम्बद वाले विशाल बेलाआर्त प्रासाद को देखकर एक बार अपने ताजमहल की याद आ जाती है। उस भवन की वास्तुकला फ्रासीसी और इटेलियान शैलियो का सम्मिश्रण है। मैक्सिको नगर को सिंकिंग सिटी कहा जाता है। मुझे बताया गया कि यह शहर समुद्री नमी के कारण धीरे धीरे पृथ्वी मे नीचे धँस रहा है। इसका प्रमाण बेलाआर्त भवन मे स्पष्ट दिखा। लाखो टन सगमरमर के बोझ से यह इमारत इतनी अधिक नीचे धँस गई है कि सडक से इसके प्रागण मे प्रवेश करने के लिये सीढियाँ चढ़कर नही वरन प्राय एक मजिल उतर कर जाना पडता है। भवन के चारो ओर सुघड सलोनी युवतियो की मूर्तियाँ है। मुख्य द्वार के ऊपर की मूर्तिकला भी उत्कृष्ट है। आन्तरिक सज्जा आधुनिक कला का सुरुचिपूर्ण प्रारूप प्रस्तुत करती है। भवन के मुख्य सभा गृह की छत मे भी आधुनिक कलाशैली मे चित्रण है। कई उच्च कोटि के सग्रहालय और प्रदर्शनियाँ इस भवन के अतिरिक्त आकर्षण है। मैक्सिको नगर का यह सर्वोत्तम भवन है जिसे शासक दियाज ने अपने शासन काल मे बनवाया था।

नगर के एक मुख्य चौराहे पर एजेल स्वतन्त्रता स्मारक भी हमे दिखाया गया। इसके ऊपर एक बडे ऊँचे गोल खम्बे के ऊपर गरुड के आकार का एक पक्षी दर्शाया गया

व्यवस्था थी।

मैक्सिको शहर आठ हजार फीट ऊँचाई पर स्थित है। अगस्त के महीने मे वहाँ का मौसम भी अगस्त के नैनीताल जैसा ही था। कभी कभी हल्की बूँदाबाँदी और बदली शेष समय छिटकी हुई धूप दिन मे एक स्वेटर और रात मे एक कम्बल की आवश्यकता। हम अगले दिन कान्फ्रेन्स के रजिस्ट्रेशन के लिए गये तो सयोग से हमारी गाडी के सारथी अग्रेजी जानते थे। वे हम भारतीयो को देखकर बडे भावुक से हो गये। वे अपने को मूलत भारतीय ही मानते है। अपनी हथेली का पिछला हिस्सा दिखाकर कहने लगे देखिये हमारा वर्ण भी आप जैसा ही है। हम लोग तो एक ही देश एक ही प्रजाति के है। भारत के बारे मे कितना कुछ जानने को वे उत्सुक थे मेरा साडी का पहनावा उन्हे बडा अच्छा लगा था। वस्तुत साडी देखकर ही वे समझ गये थे कि मै और मेरे साथी भारतीय है और उन्होने चाहा था कि हम उनकी गाडी मे ही जाएँ। रजिस्ट्रेशन के बाद उन्ही के प्रस्ताव पर हम लोगो ने शहर का एक चक्कर लगा डाला। मूर्ति कला और वास्तुकला की दृष्टि से मैक्सिको शहर बडा सम्पन्न है।

मूर्तिकला मे यद्यपि इटेलियन शैली की प्रमुखता है पर कही कही भारतीयता का पुट भी झलक जाता है। बडे बडे भवन प्रासादो का नामकरण आमतौर से पलासियो अमुक अमुक जैसा ही है अर्थात किसी सज्ञा से सबद्ध पैलेस या प्रासाद के नाम से विख्यात है। नेशनल विश्वविद्यालय भवन जो उस विश्व अधिवेशन का मुख्य स्थल था पलासियो द मिनेरिया है। इस भवन के मुख्य कक्ष मे अन्य तमाम मूर्तियो के साथ ही लेडी मिनेरिया की सगमरमर की मूर्ति भी खडी है। उदघाटन समारोह पलासियो द बेलाआर्त भवन मे सम्पन्न हुआ। सफेद सगमरमर से निर्मित शीर्ष के केन्द्र मे बडे से गुम्बद वाले विशाल बेलाआर्त प्रासाद को देखकर एक बार अपने ताजमहल की याद आ जाती है। उस भवन की वास्तुकला फ्रासीसी और इटेलियान शैलियो का सम्मिश्रण है। मैक्सिको नगर को सिकिंग सिटी कहा जाता है। मुझे बताया गया कि यह शहर समुद्री नमी के कारण धीरे धीरे पृथ्वी मे नीचे धँस रहा है। इसका प्रमाण बेलाआर्त भवन मे स्पष्ट दिखा। लाखो टन सगमरमर के बोझ से यह इमारत इतनी अधिक नीचे धँस गई है कि सडक से इसके प्रागण मे प्रवेश करने के लिये सीढियाँ चढ़कर नही वरन प्राय एक मजिल उतर कर जाना पडता है। भवन के चारो ओर सुघड सलोनी युवतियो की मूर्तियाँ है। मुख्य द्वार के ऊपर की मूर्तिकला भी उत्कृष्ट है। आन्तरिक सज्जा आधुनिक कला का सुरुचिपूर्ण प्रारूप प्रस्तुत करती है। भवन के मुख्य सभा गृह की छत मे भी आधुनिक कलाशैली मे चित्रण है। कई उच्च कोटि के सग्रहालय और प्रदर्शनियाँ इस भवन के अतिरिक्त आकर्षण है। मैक्सिको नगर का यह सर्वोत्तम भवन है जिसे शासक दियाज ने अपने शासन काल मे बनवाया था।

नगर के एक मुख्य चौराहे पर एजेल स्वतन्त्रता स्मारक भी हमे दिखाया गया। इसके ऊपर एक बडे ऊँचे गोल खम्बे के ऊपर गरुड के आकार का एक पक्षी दर्शाया गया

मैक्सिको का मानवशास्त्रीय सग्रहालय विश्व मे सर्वोत्तम है। मैक्सिको मे अब तक निवासित समस्त जातियो प्रजातियो जन जातियो आदि से सबधित सचित्र साकार प्रामाणिक सामग्री यहॉ प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। इस दिशा मे कार्यरत शोधार्थियो का यह तीर्थ स्थल है। अनेकानेक अन्य उच्च कोटि के सग्रहालय मैक्सिको नगर की बहुमूल्य थाती हैं।

मैक्सिको शहर मे डोलते हमे एक सप्ताह से अधिक हो चुका था। इस बीच हमने यहाँ के मुख्य भवन प्रासाद चापुलतपेक पार्क और झील बाल क्रीडा स्थल तथा नवनिर्मित मैक्सिको विश्वविद्यालय का भ्रमण किया। इस विश्वविद्यालय के म्यूरल उल्लेखनीय है। अधिकाश चित्रणो के कथानक आधुनिक वैज्ञानिक युग के प्रतीकात्मक अभिव्यक्तीकरण जैसे हैं किन्तु पुस्तकालय भवन की दो दीवारो के मोजैक म्यूरलो पर दृष्टि पडी तो स्तब्ध देखती रह गई। लगा कि कोई खोई हुई बहुमूल्य वस्तु अचानक मिल गई। मैक्सिको मे यही कुछ देखने की कल्पना मैंने की थी। पहले साक्षात मे इस म्यूरल मे जिसे हम प्राय ८० फीट की ऊँचाई पर देख रहे थे प्रारूप और वर्ण सयोजना मे भारतीय लोक कला शैली मे अकित भित्ति चित्रण और उसकी वर्ण सयाजना का आभास लगा था फिर गौर से देखने पर प्रत्यक्ष हुआ कि इसके प्रतीक और प्रेरक भिन्न थे। जुआन ओ गोरमन द्वारा निर्मित इस भित्ति सज्जा मे प्रागैतिहासिक काल से लेकर आज तक के मैक्सिकीय इतिहास की विविध स्थितियाँ लोक कला शैली मे अकित हैं। सूर्यवशीय चिह्न ऐजटेक माया और इन्का सस्कृतियो के प्रतीक तथा ईसाई सस्कृति सकुल के प्रभाव इस म्यूरल मे बखूबी दर्शाये गये हैं। मुख्य चित्र के ऊपरी कोनो पर दो गोल घेरो मे दो पुरुष मुखाकृतियाँ हैं। इनके रूप और चित्रण क्षेत्र मे स्थिति भारतीय लोक सस्कृतीय प्रतिमानो के सूर्य चन्द्र की आकृतियो से पूर्ण साम्यता मे हैं। अनेक देवी देवता सर्प हाथी तथा दूसरे पशु तथा स्त्री पुरुष आदि आकर्षक रगो मे दर्शाये गये हैं। मैक्सिको का राजचिह्न और भवनाकृतियो का चित्रण प्रभावोत्पादक है। सम्पूर्ण म्यूरल की विषयवस्तु अत्यत निजी होने पर भी मेरी दृष्टि मे इसमे भारतीय लोक कला शैली की निश्चित झलक है।

उपरोक्त प्रसग मे जब बातो का सिलसिला चला तो मेरी रुचि देखकर मैक्सिको के प्रसिद्ध स्तूप देखने का प्रस्ताव क्रियान्वित हो गया। यह स्तूप मैक्सिको शहर के उत्तर पूर्व मे स्थित है तथा मिश्रीय स्तूप की भाँति नही है वरन बिल्कुल ठोस है। स्तूपो के सर्वोच्च स्तर पर मदिर हुआ करते थे जो कि अब नष्ट किये जा चुके हैं। चन्द्र स्तूप के सामने लम्बा चौड़ा मैदान है प्लाजा इसमे ग्यारह वेदियाँ बनी हैं। हमारे सारथी ने जो कि हमारे गाइड भी थे बताया कि यहाँ पूर्ण चन्द्र के दिन यज्ञ आहुतियाँ आदि सम्पन्न की जाती हैं। यहाँ के स्तूपो पर बनी मूर्ति कला अदभुत है। इसमे किसी पशु की बड़ी सजीव मुखाकृतियाँ तराशी गई हैं। इनकी शक्ल मयूर और सिह की मिली जुली आकृति लगती है। अब यह पशु विलुप्त हो चुका है। क्रेटलालकोट स्तूप की यह मूर्तिकला एक हजार वर्ष से भी अधिक समय तक मिट्टी मे दबी पड़ी रहने के कारण ही स्पेनियो के ध्वस से बचकर आज तक

सुरक्षित रह सकी है। पर्यटको का यह विशेष आकर्षण स्थल है। पुरातत्त्ववेत्ताओ ने इसे ऐजटेक सस्कृति से भी पुरातन माना है। सग्रहालय मे सरक्षित २० टन के पत्थर पर तराशा गया एक कैलेडर भी प्राय हजार वर्षो तक धरती की परतो मे दबा पड़ा रहा। ऐजटेक के इस कैलेन्डर के अनुसार २० महीनो का एक वर्ष हुआ करता था तथा प्रत्येक मास का एक विशेष इष्ट देव एव निजी प्रतीक होता था। यह ऐजटेक कैलेन्डर मूलत माया कैलेन्डर से उदधृत माना जाता है।

सूर्य चन्द्र और नक्षत्र देवो की माता की एक मूर्ति भी यहाँ उल्लेखनीय है। ऐजटेको के ही विश्वास के अनुसार यह कोतेलीक नाम की देवी है। इस पाषाण मूर्ति की आकृति विलक्षण है। उसका अधोवस्त्र सर्पो से निर्मित है। गले की माला मानव हथेलियो और हृदय की शृखला है। मस्तक युगल सर्पो की सयुक्तता है एव उसकी कटि पर एक कपाल स्थित है। विलक्षणता यह कि फिर भी इस मूर्ति मे स्पृहणीयता ही है भयानकता नही।

चन्द्र स्तूप का ही एक अग है जामुआर महल। इसे भी बडी ही सावधानी से सुरक्षित रखा गया है। इसके भीतर की दीवारो पर बनी चित्रकला भी मुझे भारतीय लोक कला शैली से मिलती जुलती लगती है। स्तूपो के कान्फ्रेस हाल मे एक स्त्री मूर्ति है जिसके सामने एक छोटा सा ३ फीट गहरा तालाब है। वहाँ खडा एक व्यक्ति टूटी फूटी अग्रेजी मे हमे तालाब मे पैसे डाल कर कुछ भी प्रार्थना करने को कहता है शायद उसका आशय है कि हम तालाब की तरफ पीठ करके खडे होकर बिना देखे अपने सर के ऊपर से पीछे तालाब मे पैसा फेक कर कोई भी मनौती वहॉ माने तो पूरी हो जायेगी। हमारे अग्रेजी भाषी गाइड हम भारतीयो से कुछ अधिक ही नजदीकी नाता जोड़ चुके हैं। वह हमे मैक्सिको के इस ठगीकरण से सतर्क रहने का निर्देश देते हैं। वह पूछते है कि क्या भारत मे भी ऐसे ठग हैं ? हम लोग चुप रहने मे ही कल्याण समझते हैं।

हम इस दवी के कक्ष से बाहर निकले तो शाम हो चुकी थी। बाहर हल्की हल्की बूँदा बाँदी हो रही थी। हमे ७० मील दूर शहर वापस होना था। पूरे दिन के भ्रमण से हम परम प्रसन्न थे। भारतीय सस्कृति की एक झलक हमे अतत मैक्सिको मे मिल गई थी किन्तु हमारे सारथी महोदय अपनी खिन्नता व्यक्त कर रहे थे। उन्हे दु ख था कि इस आधुनिक सभ्यता मे अब भारतीयता के कोई लक्षण शेष नही हैं। सब तरफ पूर्ण ईसाईकरण हो गया है। पुराने मदिर गिरजाघरो मे बदल गये हैं। रहन सहन मे अमरीकी सभ्यता और फैशन प्रतिष्ठात्मक प्रतीक के रूप मे उनके ऊपर पूरी तरह से छा गये हैं और विकासशील देशो मे प्रथम मैक्सिको अपनी निजी सस्कृति को दफना कर केवल प्रगति प्रतीक अमरीका का पिछलग्गू बन गया है।

☆

लेखिका का परिचय

गुरुवर प्रोफसर हरिकृष्ण अवस्थी की मेधावी सवेदनशील एव यशस्वी पुत्री लखनऊ विश्वविद्यालय मे समाजशास्त्र की प्रोफसर एव अध्यक्ष डॉ आभा अवस्थी। राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समाजशास्त्रीय प्रकाशन तथा विभिन्न देशो मे अधिवेशनो सगोष्ठिया मे अध्यक्षता सहभागिता एव शाध पत्र प्रस्तुतियॉ समाजशास्त्रीय समितियो मे महत्त्वपूर्ण पद। कला साहित्य और सगीत मे अभिरुचि ओर इन पर समान अधिकार सक्रिय कलाकार के रूप मे राष्ट्रीय ख्याति। आकाशवाणी दूरदर्शन–कार्यक्रमो मे निजी पहचान। प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओ मे विविध विषया पर लेखन प्रकाशन। समाजशास्त्र के अनेकानक शोधपत्र एव चार पुस्तके प्रकाशित।

रचनात्मक लेखन की प्रथम पुस्तक–प्रस्तुति अतीत से ।